पद्यानुवाद मन्जरी

रचयिता
आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का

जीवन परिचय

पूर्व नाम	-	पारसचंद जैन
पिता जी	-	श्री शिखरचंद जैन
माता जी	-	श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	-	11.9.1967, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	-	फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	-	पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.)
शिक्षण	-	बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	-	19.12.1984, अतिशय क्षेत्र, पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	-	1985, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
क्षुल्लक दीक्षा	-	8.11.85, सिद्धक्षेत्र अहारजी (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	10.7.1987, अतिशय क्षेत्र थूवोनजी
मुनि दीक्षा	-	31.3.1988, सि.क्षे. सोनागिरजी, महावीर जयन्ती।
दीक्षा गुरु	-	आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्यपद	-	25.01.2015 (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)

कृतियाँ व रचनाएँ

अध्यात्मिक प्रवचन, आर्जव कविताएँ, पर्युषण पीयूष, जैनागम-संस्कार (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती भाषा में), आगम-अनुयोग (भाग 1, 2), तीर्थोदय काव्य, लोक कल्याण विधान, सदाचार सूक्ति काव्य, ओम योग ध्यान, पद्यानुवाद मञ्जरी (गोमटेश थुदि, भक्तामर स्तोत्र, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, वारसाणुवेक्खा, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका), मोक्ष प्रदायक काव्य (आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग प्रभावना काव्य, तीर्थंकर स्तुति शतक, सम्यक्ध्यान शतक, श्री अंतादि शतक, गुरु-गुण महिमा काव्य, आशीर्वाद शतक, धर्म भावना शतक, अध्यात्म समयोदय काव्य)

पद्यानुवाद मन्जरी

रचयिता

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

कृति	-	**पद्यानुवाद मञ्जरी**
रचयिता	-	**आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज**
संस्करण	-	**प्रथम, 2024**
प्रतियां	-	**1000**
पावन संदर्भ	-	**भ. महावीर के 2550 वे निर्वाण वर्ष में कार्तिक अष्टाह्निका पर्व में आयोजित श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान के शुभ अवसर पर 2024, पिड़ावा (राज.)**
पुण्यार्जक	-	1. श्रीमती अर्चना पत्नी एस.के. जैन अशोकनगर 2. श्रीमान् सुनील जैन घाट बमुरिया अशोकनगर 3. श्री राजेन्द्रकुमार, अशोककुमार टिंगु मिल (थूबोन जी क्षेत्र, अध्यक्ष)
प्राप्ति स्थान	-	आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट 4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास बावड़िया कलाँ, भोपाल-462039 मो. : 7049004653, 9425011357, 9425601161, 9425601832
मुद्रक	-	**पारस प्रिन्टर्स (पवन जैन)** **207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल** **फोन : 0755-4260034, 9826240876**

विषय-सूचि

क्र.	पद्यानुवाद	पृष्ठ
i	आमुख	iv
ii	इष्टोद्गार	vii
iii	सम्क्उद्गार	xii
iv	द्रव्यसंग्रह का सार	xv
1.	गोम्मटेश थुदि	2
2.	भक्तामर स्तोत्र	5
3.	द्रव्यसंग्रह	19
4.	इष्टोपदेश	36
5.	समाधितंत्र	51
6.	वारसाणुवेक्खा	81
7.	तत्त्वसार	106
8.	प्रश्नोत्तर रत्नमालिका	127

आमुख

महान ग्रन्थों का अनुवाद-पद्यानुवाद मञ्जरी

बहिन ऋषिका जैन,
बी.ई., एम.ए., पी.एच.डी. (संलग्न)

'पद्यानुवाद मंजरी' कृति को रचने वाले महान आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महामुनिराज; जो सदैव जिनागम के स्वाध्याय, मनन, चिंतन, लेखन और ध्यान साधना में रत रहते हैं।

सिद्धांत आगम के पारगामी, कुशल काव्य शिल्पी आध्यात्मिक संत गुरुदेव ने स्वयं को ज्ञान-ध्यान-तप में लवलीन कर इस 'पद्यानुवाद मंजरी' नामक कृति का सृजन किया है। जिसमें बड़े-बड़े ग्रंथों के पद्यानुवाद समाहित हैं।

आचार्य नेमिचंद विरचित प्राकृत भाषा में भगवान बाहुबली की स्तुति रूप गोम्मटेश थुदि का सृजन किया गया था। जिसका पद्यानुवाद आचार्य भगवन् ने 8 पद्यों में किया एवं प्रशस्ति रूप 2 दोहे भी हैं। जिसकी रचना 1993 में श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक के दौरान की थी। यह पद्यानुवाद गुरु महाराज द्वारा अपनी सभी कृतियों के अनुवाद में प्रथम पद्यानुवाद है।

आचार्य मानतुङ्ग विरचित 'भक्तामर स्तोत्र' का पद्यानुवाद कर आचार्य भगवन् ने एक नई कृति का सृजन किया; जिसका नाम 'श्री आदीश्वर प्रभु-गुणगान' रखा। इस कृति में भगवान आदिनाथ की स्तुति स्वरूप 48 पद्यों की रचना की एवं प्रशस्ति रूप में 1 पद्य

और 2 दोहों को भी लिखा है। इस कृति की रचना गुरु करकमलों से सन् 2021 के लखनादौन चातुर्मास में की गई। उक्त कृति में कुल मिलाकर 51 पद्यों के माध्यम में आदि-प्रभु का गुणगान किया गया है।

आचार्य नेमिचंद्र विरचित 'द्रव्यसंग्रह ग्रंथ' के पद्यानुवाद स्वरूप कृति का सृजन भी गुरुदेव की लेखनी के माध्यम से सन् 2017 में तारंगा जी सिद्धक्षेत्र में वर्षायोग के काल में किया गया था। जिसमें 58 पद्य एवं 13 दोहों रूप प्रशस्ति से काव्य की संपूर्णता की गई है। इस तरह कुल मिलाकर इस कृति में 72 पद्य हैं।

आचार्य पूज्यपाद रचित 'इष्टोपदेश ग्रंथ' का पद्यानुवाद भी इस कृति पद्यानुवाद मंजरी में समाहित है। जिसमें गुरुदेव ने 51 पद्यों में विषय-वस्तु एवं 4 दोहों में प्रशस्ति दर्शित की है। इस कृति रचना श्रुतपंचमी पर्व के अवसर पर अमरपाटन (म.प्र.) में की गई। इस तरह कुल पद्यों की संख्या 55 है।

'समाधितंत्र' महान ग्रंथ जो कि आचार्य पूज्यपाद स्वामी द्वारा ही विरचित है। इसका पद्यानुवाद भी आचार्य भगवन् ने किया है। इसके अंतर्गत 108 पद्यों में विषय वस्तु एवं 11 दोहों में प्रशस्ति समाहित है। यह आध्यात्मिक कृति बड़ी मार्मिक है। इसकी रचना सन् 2014 में हरदा (म.प्र.) में हुई। इसमें कुल पद्यों की संख्या 119 है।

आचार्य कुंदकुंद देव विरचित 'वारसाणुवेक्खा' ग्रंथ के पद्यानुवाद स्वरूप कृति की रचना गुरुदेव की लेखनी के माध्यम से सतना (म.प्र.) में की गई। जिसमें द्वादश अनुप्रेक्षाओं (बारह भावनाओं) की वैराग्यप्रद चिंतन की बात 91 पद्य रूप में कही गई है। अंत में प्रशस्ति स्वरूप 10 दोहों की रचना भी हुई। इस तरह इस कृति में कुल पद्यों की संख्या 101 है।

देवसेन आचार्य विरचित तत्त्वसार ग्रंथ के पद्यानुवाद रूप कृति रचना 76 पद्यों के माध्यम से आचार्यश्री द्वारा शाहपुर (गणेशगंज) में की गई जिसमें 6 दोहों रूप प्रशस्ति भी संलग्न है। इस तरह कुल पद्यों की संख्या 82 है।

राजर्षि अमोघवर्ष विरचित महान लघु ग्रंथ 'प्रश्नोत्तर रत्नमालिका' का पद्यानुवाद भी बड़ा ही रोचक है। आचार्य भगवन् की यह कृति भी शाहपुर (म.प्र.) में लिखी गई। जिसमें 29 पद्य एवं प्रशस्ति रूप 8 दोहे हैं। इस तरह कुल संख्या 37 है।

इन 7 महान ग्रंथों का पद्यानुवाद लय के अनुरूप कुछ शब्दों को व्यवस्थित कर गुरुदेव द्वारा इस अद्वितीय कृति का नाम 'पद्यानुवाद मंजरी' रखा गया है। यह कृति विद्वत् वर्ग के सभी विद्वानों एवं स्वाध्याय प्रेमियों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। इसी भावना के साथ आचार्य भगवंत के चरणों में अनंतों बार नमोस्तु.....

23/11/2024, पिड़ावा (राज.)
मार्गशीर्ष कृष्णा अष्टमी

इष्टोद्‌गार

–पं. लालचन्द्र जैन ''राकेश''भोपाल

भारतीय संस्कृति के इतिहास में सन्त–साहित्य का अत्यंत गौरवपूर्ण स्थान रहा है। सन्त एक ओर तो अपनी साधना तथा तपस्या के बल पर आत्मकल्याण में निरत रहते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वकीय अज्ञानता के कारण भटके हुए समाज को भी कल्याणकारी दिशा प्रदान करते हैं। उन सन्तों में दो महान् श्रमण सन्तों की चर्चा करना हमें अभिप्रेत है। प्रथम हैं इस युग के अध्यात्म सूर्य प.पू. 108 आचार्यश्री कुन्दकुन्द देव और द्वितीय हैं कालजयी साहित्यस्रष्टा प.पू. 108 आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी।

श्री कुन्दकुन्द जैनधर्म के परम प्रभावक आचार्य हैं। आप ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हुये थे। आपने तत्कालीन जनभाषा प्राकृत में लगभग चौरासी पाहुड़ों का प्रणयन किया, जिनमें समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि प्रमुख तथा उपलब्ध ग्रन्थ हैं। आपके दिव्य, साहित्यिक अवदान के कारण इन्हें प्रत्येक मांगलिक कार्य में मंगलचतुष्टय के अन्तर्गत सादर स्मरण किया जाता है।

आचार्यश्री कुन्दकुन्द ने ''वारसाणुवेक्खा'' ग्रंथ की भी रचना प्राकृतभाषा एवं पद्यशैली में की है। इस ग्रंथ में ''बारह भावनाओं'' का वर्णन है। वस्तु स्वभाव के पुनः–पुनः चिन्तवन करने को भावना या अनुप्रेक्षा कहते हैं। जैसे आयुर्वेद चिकित्सा–

पद्धति के अनुसार औषधियों में रस विशेष की भावनाएँ देने से वे अधिक प्रभावक हो जाती हैं वैसे ही वस्तुस्वभाव का बार-बार चिन्तवन करने से संसार-शरीर और भोगों के प्रति उत्पन्न वैराग्य उत्कर्ष को प्राप्त करता है।

संसार सागर से उत्तीर्ण होने के लिए इनकी चिन्तना का अत्यधिक महत्व है। भगवान तीर्थंकर भी बारह भावनाओं का चिन्तवन करके संसार-शरीर एवं भोगों से विरक्त हुए हैं। इनके समान इस संसार में जीव का हित करने वाला दूसरा कोई नहीं है। यह द्वादशांग का रहस्य है।

भारतीय जैन परम्परा में जो लब्धप्रतिष्ठित तत्त्वदृष्टा शास्त्रकार हुए हैं, उनमें आचार्य पूज्यपाद का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। आप साहित्याकाश के कभी अस्त न होने वाले ऐसे प्रकाशमान सूर्य हैं जिसके आलोक से दशों दिशाएँ सदा आलोकित होती रहेंगी। सर्वार्थसिद्धि, समाधितंत्र, दशभक्ति, जैनेन्द्र व्याकरण एवं इष्टोपदेश आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं। आपका समय ईसा की पाँचवी शताब्दी माना जाता है।

'इष्टोपदेश' आचार्यश्री पूज्यपाद की लघुकाय किन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है। यह संस्कृत भाषा एवं पद्यशैली में निबद्ध है। इसे हम "जैन उपनिषद्" कह सकते हैं। इसमें मानव कल्याणकारी, प्रयोजनभूत, इष्ट तत्वों का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। अतः इसका 'इष्टोपदेश' नाम सार्थक है।

परम पूज्य 108 आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज, वर्तमान के वर्द्धमान, महाकवि, कुन्दकुन्द देव की परम्परा के उन्नायक, सन्त शिरोमणि 108 आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के परमप्रभावक सुयोग्य शिष्य हैं। आप सरलता की मूर्ति हैं। आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, निर्दोषचर्या के पालक, ज्ञान-ध्यान,तपोरत साधु हैं। आपका अन्तःकरण विशुद्ध एवं बाह्य व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावक है।

बहुश्रुतज्ञ, बहुज्ञ एवं बहुभाषाविद् आपश्री ने आचार्य कुन्दकुन्द देव रचित ''वारसाणुवेक्खा'' एवं आचार्य श्री पूज्यपाद द्वारा रचित ''इष्टोपदेश'' का ज्ञानोदय छन्द में हिन्दी पद्यानुवाद किया है। आपने यह पुनीत एवं सर्वजनोपयोगी कार्य कर हम सब पर महदुपकार किया है क्योंकि प्राकृत एवं संस्कृत भाषा तथा पद्यशैली में निबद्ध ये रचनाएँ भावभासना की दृष्टि से सर्वजनसुगम नहीं थी। इनका विषय भी अध्यात्म है, जिसे विरल बुद्धिजीवी व्यक्ति ही समझ सकते हैं। करुणा-कलित हृदय आचार्य श्री के इस उपकार के प्रति हम उनके चरणों में सादर नमोऽस्तु अर्पित करते हैं।

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज की प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी है। आपका भाषा पर असाधारण अधिकार है, शब्द भंडार विशाल है। आप शब्दशक्तियों के ज्ञाता हैं, छन्द रचना में परम प्रवीण हैं, अलंकार योजना में दक्ष हैं तथा भाव प्रवणता में

अत्यंतकुशल हैं। भावसम्प्रेषण की शक्ति भी आप में अद्भुत है।

प्रथमतः तो कविता करना ही एक कठिन कार्य है फिर किसी महान् आचार्य श्री की पद्यावली की पद्य में ही अभिव्यक्ति देना और भी दुष्कर है। यह कठिनाई उस समय और भी बढ़ जाती है जब विषय आध्यात्मिक, गूढ़, शुष्क, दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं विशिष्ट पारिभाषिकों से युक्त हो। 'वारसाणुवेक्खा' एवं 'इष्टोपदेश' का अनुवादन इसी श्रेणी में आता है। यह महत्तम कार्य तो कोई कुशलकवि, आगम मर्मज्ञ, भाषा वैज्ञानिक एवं उत्तम शब्दशिल्पी ही कर सकता है। यहाँ मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह दुःसाध्य कार्य प.पू. आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज की तपःपूत लेखनी ने पूर्ण साफल्य के साफल्य के साथ कर दिया है। यद्यपि विषय अध्यात्म है, गूढ़ है, कठिन एवं शुष्क है तदपि आचार्य श्री ने अपनी सरल, सरस, मधुर, सुबोध, प्रवाहमय भाषा द्वारा सुन्दर अभिव्यक्ति देकर वस्तुतत्व पाठकों को सुवाच्य और सुपाच्य बना दिया है।

पूज्य आचार्य श्री द्वारा कृत इस अनुवादन में भावों को पूर्ण मुखरता मिली है। छन्द चुस्त और दुरुस्त हैं, उनमें गेयता और प्रवाह है। भाषा परिमार्जित, भावानुकूल, अभिव्यक्तिक्षम एवं प्रसादगुण युक्त है। सर्वत्र मौलिकता विद्यमान है। बहुत क्या कहें? हम इसे एक आदर्श अनुवाद कह सकते हैं। भक्त व विद्वद् गण इसे ''मेरी भावना'' की लय में गाकर कण्ठ पाठ कर सकते हैं।

मुझे इन रचनाओं के बारे में दो शब्द लिखने एवं आद्योपान्त पढ़ने का सुयोग मिला इसके लिए मैं अपना महान् पुण्योदय मानता हूँ। प.पू. मुनिश्री इसी प्रकार अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग द्वारा जिनवाणी की सेवा करते हुए धर्म एवं समाज को दिव्य साहित्यिक अवदान प्रदान कर संसार के भव्यजीवों को मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते रहें, यही मंगल भावना है।

प.पू. आचार्य श्री के पावन चरणों में सादर नमोऽस्तु।

सम्यक् उद्गार

डॉ. अजित जैन

सम्पादक-भाव विज्ञान, भोपाल

भ. महावीर के निर्वाण से पाँच सौ वर्ष के अन्तराल से दिगम्बर आम्नाय के एक प्रधान आचार्य कुंदकुंद हुए। इनके पाँच नाम थे-कुन्दकुन्द, वक्रग्रीव, एलाचार्य, गृद्ध पृच्छ और पद्मनन्दि। आप द्रविण देशस्थ कोण्डकुण्ड नामक स्थान के रहने वाले थे। आपको सत्संयम के प्रभाव से चारण ऋद्धि उत्पन्न हो गई थी जिसके माध्यम से पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर आकाश में गमन करते हुए आप पूर्व विदेह की पुण्डरीकणी नगरी में गए थे। वहाँ सीमन्धर भगवान की वन्दना करके व दिव्य ध्वनि सुनकर आए थे। आप आचार्य उमास्वामी के गुरु थे। आपने बारह हजार श्लोक प्रमाण परिकर्म नाम की षट्खंडागम के प्रथम तीन खंडों की व्याख्या की। इसके अतिरिक्त 84 प्राभृत की रचना की। वर्तमान में आचार्य कुन्दकुन्द के उपलब्ध प्राकृत साहित्य में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड़ के अतिरिक्त द्वादशानुप्रेक्षा **वारसाणुवेक्खा** एवं दशभक्ति हैं।

इसी प्रकार आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि की रचना की। आपका संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। इनके ग्रन्थ दशभक्ति, जैनेन्द्र व्याकरण, छन्दशास्त्र, वैद्यसार, सर्वार्थसिद्धि, मुग्धबोध व्याकरण, जन्माभिषेक शान्तयष्टक,

इष्टोपदेश, समाधितंत्र और सारसंग्रह।

सैद्धान्तिक देव नेमिचंद्र ने भव्यों के लिए श्रावकाचार के अलावा "द्रव्यसंग्रह" लघुकृति की रचना की है।

जैन आगम में अनेक ग्रंथ एवं पुराणों को चार अनुयोगों में विभाजित किया गया है :-

प्रथमानुयोग- में महापुरुष संबंधी कथा रूप शास्त्र।

करणानुयोग- में लोक-अलोक के विभाग, युगों के परिवर्तन एवं चारों गतियों के स्वरूप का वर्णन करने वाले शास्त्र हैं।

चरणानुयोग- में मुख्यतः गृहस्थ तथा मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि एवं रक्षा के साधनों के वर्णन करने वाले शास्त्र हैं।

द्रव्यानुयोग- में जीव-अजीव तत्त्वों को, पुण्य-पाप और बन्ध-मोक्ष को तथा भावश्रुत रूपी प्रकाश को विस्तारने वाले शास्त्र हैं।

प्रस्तुत कृति में **द्रव्यानुयोग** के अन्तर्गत निम्न ग्रन्थों का समावेश किया गया है:-

(1) आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित "**वारसाणुवेक्खा**" में वर्णित बारह भावनाएँ।

(2) आचार्यश्री पूज्यपाद रचित दो आध्यात्मिक ग्रन्थों

''**इष्टोपदेश**'' और ''**समाधितंत्र**'' में वर्णित तत्त्व; तथा

(3) सैद्धांतिक देव नेमिचंद्र विरचित ''**द्रव्यसंग्रह**''।

उपरोक्त चार ग्रन्थों का ज्ञानोदय छंद में हिन्दी पद्यानुवाद **संतशिरोमणि आचार्यश्री 108 विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित एवं चा.च. आचार्यश्री शांतिसागर जी महाराज की परम्परा वाले आचार्यश्री 108 सीमंधरसागरजी** द्वारा आचार्य पद से अलंकृत परम पूज्य आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज ने किया है। नवीन कृति ''**जिनागम संग्रह**'' में उक्त चारों ग्रन्थों को संगठित किया गया है। इन अपूर्व ग्रन्थों के अपूर्व एवं गूढ़ रहस्यों को सरल भाषा में किया गया पद्यानुवाद समाज के सुधीजनों को अध्ययन एवं अध्यापन करने हेतु प्रेरित करता रहेगा।

परम पूज्य आचार्य संघ के चरणारविन्द में शत-शत वंदन-वंदन-वंदन।

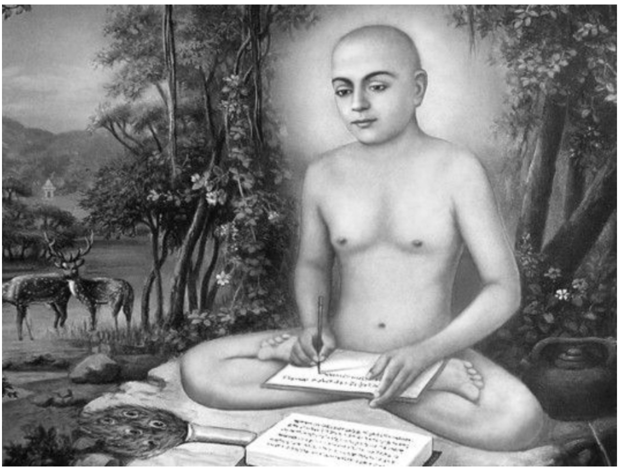

द्रव्य संग्रह का सार

–मुनिश्री नमितसागर जी

संसार में प्रत्येक जीव सुख चाहता है और उसकी प्राप्ति के लिये सतत् पुरुषार्थरत् रहता है। लेकिन उसे आभास नहीं रहता कि शाश्वत सुख की उपलब्धि कैसे हो। इन्द्रिय सुख को अपना ध्येय मानता है। भव्य जीव का जब जैन दर्शन से परिचय होता है और जिनवाणी से आकर्षित होता है तब उसे पठन पाठन की जिज्ञासा होती है। क्योंकि उसे शाश्वत सुख की जानकारी होती है और उत्सुकतावश पठन–पाठन के लिये अग्रसर होता है। जो भव्य संस्कारित जैन कुल में जन्म लेता है उसे सहज ही पूर्व पुण्य प्रभाव से जिनवाणी का सान्निध्य प्राप्त होता है।

जब कभी भी कोई किसी कार्य को करने के लिये प्रेरित होता है तो उसके लिये निमित्त का कारण भी रहता है, इसी अनुरूप द्रव्य संग्रह को आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव ने भी किसी कारण के उपस्थित होने पर रचना की है। इसकी रचना के लिये उपलब्ध कथानक निम्न प्रकार है–

मालवा देश में धारा नगर के स्वामी राजा भोज कलिकाल चक्रवर्ती संबन्धी जो श्रीपाल मण्डलेश्वर थे, उनके आश्रम नगर में एक श्री सोम नामक श्रेष्ठी थे। श्रेष्ठी राजा के भाण्डागार के स्वामी थे। ये नरकादि दुःखों से भयभीत तथा शुद्ध आत्म तत्त्व की भावना

रखने वाले थे। ऐसे भव्य जीव के संबोधन के लिये आचार्य नेमिचन्द्र देव ने मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में विराजमान होकर पहले 26 गाथाओं से लघु द्रव्य की रचना की। तत्पश्चात् विशेष तत्त्वों को जानने के लिए वृहद् द्रव्य संग्रह 58 गाथाओं सहित वृहद् द्रव्य संग्रह ग्रंथ पूर्ण किया।

इस ग्रंथ को तीन अधिकारों में विभाजित किया गया है, पहले 27 गाथाओं द्वारा छह द्रव्य का कथन है, द्वितीय अधिकार में ग्यारह गाथाओं में सात तत्त्व और नौ पदार्थों का वर्णन उपलब्ध है। तदुपरान्त बीस गाथाओं द्वारा मोक्षमार्ग प्रतिपादित है। ग्रंथ के मंगलाचरण में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव ने जीव और अजीव द्रव्य को लेकर सर्वज्ञ को स्मरण किया है जो इस कथन का द्योतक है कि आचार्य नेमिचन्द्र देव ने जीव को जीव का परिचय देकर उसके कल्याण के लिये अजीव द्रव्य आदि का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत ग्रंथ व्यवहार और निश्चय नय के कथन के लिये एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है क्योंकि प्रारंभिक स्थिति में भव्य जिज्ञासु को अनेकान्त का दर्शन कराते हुए उसके मस्तिष्क पटल को जैन दर्शन के अति प्रगाढ़ता प्रदान कराता है। इससे वह भव्य जीव अपने जीवन में द्रव्य संग्रह की गाथाओं को हृदयांगम करता हुआ जैन सिद्धान्त को अच्छी तरह समझने का अभ्यास करता है। इसके साथ वह भव्य लब्धि/ निमित्त के माध्यम से मोक्षमार्ग के लिये प्रेरित हो सकता है क्योंकि इस में जीव के स्वयं का स्वरूप व अन्य

द्रव्यों का कथन करते हुए पुण्य-पाप व पंच परमेष्ठी का स्वरूप बतलाते हुए ध्यान का वर्णन किया है।

इन पंक्तियों के लिखते हुए हमें आनन्द की अनुभूति हो रही है कि मुनि आर्जवसागरजी महाराज के आचार्य पद से सुशोभित होते हुये यह पहली पद्यानुवाद की कृति है। गुरु महाराज ने सत्ताइस वर्षीय मुनित्व काल में करीब अठारह हजार कि.मी. और तेरह प्रान्तों में विहार करते हुए धर्म की प्रबल प्रभावना की है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक अवसर अवश्य आता है जिससे वह अपने कृतत्व का फल पाता है। यही गुरु महाराज के साथ घटित हुआ। पिछले वर्ष जनवरी 2015 में हरदा (म.प्र.) नगर में शीतकाल चल रहा था, अचानक इन्दौर समाज व भव्य भक्तों के माध्यम से 90 वर्षीय आचार्य शांतिसागर जी के परंपरा के आचार्य सीमंधरसागर महाराज जी की सल्लेखना का प्रसंग उपस्थित हुआ। गुरु महाराज ने उनकी भावनाओं व स्थिति को समझते हुए इन्दौर के लिये विहार कर दिया और वहाँ पहुँचते हुए क्षपक का कुशल क्षेम लेते हुये नमन किया। आचार्य सीमन्धरसागर जी महाराज ने मुनि आर्जवसागर जी को आचार्य पद ग्रहण और स्वयं की सल्लेखना के लिये निवेदन किया। आर्जवसागर जी महाराज ने न चाहते हुये मौन से आचार्य पद को स्वीकार किया। गुरु महाराज जी के आचार्य पद ग्रहण से व उनके दीर्घ अनुभव से हमें भी दीक्षा का लाभ मिला जिसके लिये हम भवों-भवों तक उनके

अनुग्रहीत रहेंगे। प.पू. 108 आचार्य विद्यासागर जी महाराज जी से दीक्षित हैं। आपकी निर्दोष चर्या, शांत स्वभाव व सरलता के कारण समाज में विशेष प्रभाव होता है और सदैव आपको अन्तःकरण से अपना इष्ट मानते हैं। आप बहुभाषीय हैं विशेषतया प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी व तमिल भाषा पर प्रभुत्व रखते हैं।

संस्कारित परिवार में अधिकांश बच्चे और युवा गुरु सान्निध्य व पाठशाला के माध्यम से द्रव्य संग्रह आदि का कण्ठ पाठ करते हैं। यह ग्रंथ प्राकृत भाषा में होने से वर्तमान की नई पीढ़ी को याद करने में कठिनाई होती है, इसके अलावा गाथा में निहित भाव भी ग्रहण नहीं हो पाते हैं। इस तथ्य को ध्यान रखते हुये व वर्तमान पीढ़ी को धर्म में रुचि बनाये रखने के लिये गुरुवर को विचार आया होगा कि क्यों न इस ग्रंथ को सरल हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद के माध्यम से उपलब्ध करायें। अतः यह सरल हिन्दी में द्रव्य संग्रह भाव सहित पाठकों को उपलब्ध होगा।

द्रव्य संग्रह के विषय को लक्षित करते हुये आचार्यवर ने अपने अंतरंग को द्रवित करते हुये भव्य जीवों के लिए अत्यन्त सरल भाषा में पद्यों की रचना की है, जिसे सहज ही भव्य पाठक इन पद्यों को कण्ठ-पाठ कर सकते हैं। साथ ही विषय की अनुभूति भी कर सकते हैं। मुझे लिखते हुये हर्ष हो रहा है कि तारंगा सिद्ध क्षेत्र (गुजरात) पर चातुर्मास के काल में गुरुवर ने अत्यधिक व्यस्तता होते हुए भी इस ग्रंथ का पद्यानुवाद किया। हम

नवदीक्षितों को अलग से ग्रंथ के रचना काल व पूर्णता पर इसका विवेचन किया। कवि, कविता तो लिखता है लेकिन उन कविताओं का जब तक स्वयं विवेचन न करे तब तक उसका सच्चा स्वरूप समझ में नहीं आता है। बस यही हमारे साथ हुआ, कि द्रव्य संग्रह तो अनेक बार पढ़ा होगा लेकिन इस पद्यानुवाद के माध्यम से पहली बार अवसर प्राप्त हुआ जो स्मरणीय रहेगा। उसी कारणवश हमने आचार्यगुरुवर से निवेदन किया कि हम इसके लिये अपने विचार व्यक्त करेंगे। यह अवसर पाकर हम आचार्य महाराज के अनुग्रहीत रहेंगे। स्वयं अनुभूति से हमारा भव्य जो जीवों को संदेश है कि प्रस्तुत द्रव्य संग्रह के पद्यानुवाद को याद करें ताकि उनके जीवन में जैन दर्शन का सिद्धान्त दृढ़ता से प्रवेश कर सकेगा। अंत में हम भावना भाते हैं कि यह पद्यानुवाद भव्य जीवों के लिये कल्याणमार्ग में कारण बनें। इति

अचार्य नेमिचन्द्र द्वारा विरचित

'गोमटेश थुदि' का पद्यानुवाद

(बाहुबली भगवान का गुणगान)

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

गोमटेश थुदि

नीलाम्बुज की पाँखुड़ियों सम, जिनके नयन सुशोभित हैं।
पूर्णचन्द्र सम मुखमंडल अति–सुखकर अनुपम हर्षित है ॥
सुन्दर नासा ने जीता है, चम्पक पुष्प सु–शोभा को।
नित नमते हम गोमटेश के, शिवपुर जाने चरणों को ॥1॥

★★★

मेघ रहित नभ निर्मल, जल सम, जिनके कपोल द्वय प्यारे।
झूम रहे हैं सुकर्ण जिनके, आ कन्धों पर वे न्यारे॥
इन्द्र–गजों की सुण्डा सदृश, दोनों भुजा समुज्ज्वल हैं।
गोमटेश के चरणाम्बुज नम, करते मन भवि उज्ज्वल हैं ॥2॥

★★★

जीत लिया तव सौम्य कण्ठ ने, दिव्य शंख की शोभा को।
विशाल एवं उन्नत देखो! हिम गिरि सम इन कंधों को॥
सुदृढ़ मनोहर मध्य भाग जो, प्रेक्षणीय है शुभा रहा।
नित नमता मैं गोमटेश तव–रूप सभी को लुभा रहा॥3॥

★★★

विंध्य शिखर पर तप की उत्तम, आभा से जो भासित हैं।
भव्य जनों को विरागता के, शिखामणि बन राजित हैं॥
शरद पूर्णिमा के शशि सम जो, त्रिलोक में सुख दाता हैं।
कामदेव जिन बाहुबली को, हम नमते रख माथा हैं ॥4॥

★★★

ध्यान समय माधवी लताएँ, तन पर चढ़ लिपटीं जिनके।
भव्यों को हैं बहुफल देते, कल्पवृक्ष सम हो उनके॥
देवेन्द्रों के समूह से भी, तव चरणाम्बुज अर्चित हैं।
नित नम लो! मन गोमटेश को, जो त्रिलोक में पूजित हैं ॥5॥

★ ★ ★

अम्बर त्यागे दिग् अम्बर बन, निर्भयता को धार लिया।
वस्त्रादिक से विरक्त होकर, पवित्र मन को बना लिया॥
अचल मेरु सम खड़े हुए हो, सर्पादिक से नहीं डिगे।
बाहुबली जी तव चरणों से, मेरा मन न कहीं डिगे ॥6॥

★ ★ ★

भोगों की आशा से विरहित, निर्मल समकित धारी जो।
दोषों की जड़ मोह नष्ट कर, विषय सुखों के त्यागी वो॥
वीतराग बन, भरत भ्रात में, शल्य नहीं वैरागी थे।
पहुँचे मुक्ति गोमटेश जी, नित नमते अविकारी थे ॥7॥

★ ★ ★

उपाधियों से मुक्त हुए थे, धन गृह से भी नहीं घिरे।
समता की महिमा के द्वारा, मोह मदों से हुए परे॥
खड्गासन से एक वर्ष तक, उपवासों सह ध्यान किया।
गोमटेश जी सम सुख पाने, तव पद में गुण गान किया ॥8॥

★ ★ ★

गोमटेश थुदि के रहे, कर्त्ता सुन्दर जान।
नेमिचन्द्र आचार्य को, ''आर्जव'' नमते मान॥

★ ★ ★

श्रवण बेलगोला रहा, अतिशय क्षेत्र महान।
हुआ पद्य अनुवाद यह, जो जिन गुण की खान॥

आचार्य मानतुंग द्वारा विरचित

श्री आदीश्वर प्रभु-गुणगान

(भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद)

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

प्रभु-पाद द्वय मम-रक्षक

1. भक्त-देव जहँ झुका रहे हैं, मुकुट सुमणियों से प्यारे।
रत्नकांति की शोभा-पाते, प्रभु-पाद द्वय जग-न्यारे॥
अघ-तम नाशक, भव-समुद्र में, पतित प्राणियों को तारें।
युग-आदि में हुए आदि-जिन, हों मम-रक्षक सिर-धारें॥

★★★

मंगल स्तुति करता मैं

2. ऋषभदेव जो, द्वादशांग से, चतुर बने वे इन्द्र महान।
जिनके द्वारा मन-भावक वा, प्रशंसनीय-स्तोत्र सुजान॥
स्तुति द्वारा पूज्यनीय-जिन, तव-चरणों में नमता मैं।
प्रथम-जिनेश्वर-आदिनाथ की, मंगल-स्तुति करता मैं॥

★★★

स्तुति करने तत्पर

3. देवों द्वारा पूजित-आसन, ऐसे जिनवर पूज्य-प्रधान।
लज्जा-बिन ही अज्ञ रहा फिर, स्तुति करने तत्पर जान॥
जल में दिखते चन्द्र-बिम्ब को, बिना विचारे पकड़े कौन?
बालक ही वह प्रयास करता, वैसा ही मैं करूँ अमौन॥

★★★

सुंदर गुण के सागर; प्रभु जी

4. शशि-सम सुंदर गुण के सागर, प्रभु जी तव, निज-प्रतिभा से।
सुरगुरु-सम है कौन पुरुष गुण, -गा सकता निज-अभिधा से॥
प्रलयकाल का पवन चले जहँ, मगरमच्छ भी शोर करें।
ऐसे-सागर को बाहु से, -कौन तैर कर पार करे ?॥

★★★

जिनवर भक्ति के वश मैं

5. हे! मुनियों के स्वामी-जिनवर, शक्तिहीन होकर भी मैं।
स्तुति को तैयार हुआ हूँ, नाथ भक्ति के हो वश में॥
जैसे-बल के बिना विचारे, शिशु-रक्षा में डूबा-मृग।
क्या न जाता सिंह के आगे, प्रेम-भाव में भीगा-मृग॥

★★★

अल्प बुद्धि हूँ, भक्ति ही बुलाती चरणन में

6. अल्प-बुद्धि हूँ सुधी-जनों में, रहा हँसी का कारण मैं।
फिर भी तव-गुण की भक्ति ही, मुझे बुलाती चरणन में॥
बसन्त-ॠतु में कोयल जैसे, मीठे-स्वर में गाती है।
उसका कारण आम-मञ्जरों, की सुरभि जब आती है॥

★★★

तव भक्ति से पाप विनष्ट होते, पलभर में

7. भव-भव से संचित हे! प्रभुवर, भविजन के दृढ़ पाप बुरे।
तव-संस्तुति से विनष्ट होते, क्षण-भर में संताप भरे॥
जग में निशा-तिमिर, जब काले,-भ्रमरों-सम है छा जाता।
प्रातः सूर्य-उदय से क्षण में, नष्ट स्वयं ही हो जाता॥

★★★

स्तवन सुधी-जनों का चित्त हरेगा

8. ऐसा मान मैं स्तवन करता, स्वल्प-बुद्धि से हे! स्वामिन्।
सुधी-जनों का चित्त-हरेगा, परम बनेगा जो पावन॥
जैसे-जल की बूँद, कमल के- पत्तों पर शोभा-पाती।
मोती-जैसी आभा से वह, सबके मन को ललचाती॥

★★★

भवगन् तव सुकथा; दुःख हरती

9. दोष-रहित तव-स्तवन भगवन्, दूर रहे पर मात्र यहाँ।
तव-सुकथा भी प्रभुवर जग में, दुःख-हरती वह श्रेष्ठ महा॥
सूर्य यहाँ से बहुत दूर पर, उसकी मात्र प्रभा से ही।
खिल जाते हैं सरोवरों में, कमलों के दल निश्चित ही॥

★★★

सद्गुण गाने वाले होते तव सम उत्तम

10. है आश्चर्य नहीं जगभूषण, हे! करुणानिधि तव-थुदि से।
सद्गुण-गाने वाले होते, तव-सम उत्तम सन्मति से॥
उस धन के स्वामी से जग में, कौन प्रयोजन रखता है?
जो अपने उस दास-पुरुष को, स्वयं रूप ना करता है॥

★★★

अनिमेष दर्शनीय प्रभु तव दर्शन

11. रहे अनिमेष दर्शनीय-प्रभु, तव-दर्शन कर भविजन के।
नेत्र कहीं न पाते जिनवर, शांति, तुष्टि जग में रमके॥
क्षीरोदधि के शशि-सम उत्तम, -नीर-पानकर कौन यहाँ?
लवणोदधि के खारे-जल को, पीना चाहे कौन कहाँ?॥

★★★

त्रिभुवन में अद्वितीय हो

12. रागरूप से विरहित भू-पर, जितने थे परमाणु प्रभो।
उतने ही अणुओं से शुभ तव-, औदारिक-तन बना विभो॥
इस-त्रिभुवन में अद्वितीय हो, रत्नाभूषण-सम जिनवर।
नहीं जगत् में अन्य आप-सम, सौम्य-रूप है हे! प्रभुवर॥

★★★

लोक की उपमाओं को फीका करने वाला तव मुख

13. देव, नरेन्द्र व धरणेन्द्रों के, नेत्रों को हरने-वाला।
पूर्ण-लोक की उपमाओं को, फीका भी करने-वाला।
अनुपम तव-मुख और कहाँ वह, चन्द्र कलंकी है भाता।
दिन में ढाक-पत्र-सम नीरस, पीला जो है पड़ जाता॥

★★★

उज्जवल-कला समूही गुण; लोक लाँघ रहे हैं

14. पूर्ण-चन्द्र बिम्ब-सम उज्ज्वल, -कला समूही गुण-प्यारे।
तीन-लोक को लांघ रहे हैं, तव-आश्रित हैं जग-न्यारे॥
उन्हें रोकता कौन जगत् में, स्व-इच्छा से विचर रहे।
शोभें जग में शाश्वत रहकर, शांति-प्रदायी अमर रहे॥

★★★

अविचल व अपकारी मन

15. नहीं अप्सराओं से जिनका, मन थोड़ा भी हरा गया।
अविचल व अविकारी-मन से, उपसर्गों को सहा गया॥
इसमें क्या आश्चर्य रहा है, प्रलय-काल का पवन रहे।
मेरु-पर्वत हिल सकता क्या? अनुपम-बल जब सघन रहे॥

★★★

अनुपम जग के दीपक हो

16. धूम, तैल, बाती से विरहित, अनुपम जग के दीपक हो।
पूर्ण-जगत् में प्रकाश भरते, ना बुझते आश्चर्य अहो॥
पर्वत को भी डिगा सके जो, वायु से न प्रेरित हो।
ऐसे केवलज्ञान दीप-सह, अमर रहो जग-शोभित हो॥

★★★

सूर्यों से भी उत्तम प्रकाश प्रभु में

17. ना होते हो अस्त मुनीश्वर, नहीं ग्रसित राहु से हो।
ना मेघों से छुप जाते हो, अमर-सूर्य तुम भासित हो॥
तीन-लोक भी एक साथ ही, शीघ्र प्रकाशित होता है।
ऐसा सूर्यों से भी उत्तम, प्रकाश प्रभु में होता है॥

★★★

पूर्ण चन्द्र+सम कांति भरे आपका मुख

18. सदा उदित रहने वाला वा, मोह-तिमिर का नाशक जो।
नहीं राहु व मेघों से भी, छुपे; अपूर्व-प्रकाशक जो॥
पूर्ण-चन्द्र-सम कान्ति विश्व में, -भरे आपका मुख ऐसा।
सब-भव्यों को शान्ति-प्रदायी, अमृत का झरना जैसा॥

★★★

तव मुख दर्शन से तिमिर पूर्ण नश जाता

19. हे! भगवन् तव-मुख-दर्शन से, तिमिर पूर्ण नश जाता है।
तब निशि में वह चाँद तथा वह, दिन का सूर्य न भाता है॥
पके-धान के खेतों पर वे, शोभित बादल जल से पूर्ण।
जग में नहीं प्रयोजन रखते, फल मिल जाता जब संपूर्ण॥

★★★

जिनवर की परमातम में केवलज्ञान भाता

20. केवलज्ञान यथा भाता है, जिनवर की परमातम में।
नहीं सरागी हरि आदिक में, -शोभे, लौकिक-आतम में॥
तेज शोभता, चमकदार उन, उत्तम-मणियों में प्यारे।
शोभें ना; वे काँच रहे हों, चमक-पने को हों धारे॥

★★★

जिनके देखे जाने पर अन्य नहीं देव सुहाता

21. हे! भगवन् मैं यही मानता, हरि, हरादि वे देव सही।
जिनके देखे जाने पर मन, -तोषित हो तव-दर्श सही॥
क्या होता है लाभ आपसे, तव-दर्शन से पृथ्वी पर।
अन्य नहीं फिर देव सुहाता, भव-भव में इस धरती पर॥

★★★

तव सम जननी माता अन्य नहीं

22. नारी देती जन्म शताधिक, तव-सम ना जननी-माता।
अन्य नहीं है पुत्र-प्रदायी, इस जग में सुख की दाता॥
नक्षत्रों को सभी-दिशायें, पैदा करती निश-दिन ही।
मात्र सुकान्त रवि की जननी, पूर्व-दिशा है वह इक ही॥

★★★

सूर्य समा तेजस्वी अनन्य ही तुम नेता हो

23. हे! मुनियों के नाथ मुनीश्वर, सूर्य-समा तेजस्वी हो।
मोह-तिमिर से विरहित निर्मल, माने, परम मनस्वी हो॥
तव-पवित्र चरणों की सन्निधि, -पा, भवि मरण विजेता हो।
आप-समा ना मोक्ष-मार्ग है, अनन्य ही तुम नेता हो॥

★★★

अमल जिनेश्वर गुण समुद्र हो

24. प्रभो आप को भविक-पुरुष वे, अक्षय विभो अचिन्त्य कहें।
असंख्य आद्य व ब्रह्मा ईश्वर, अनंग केतु अनन्त कहें॥
योगीश्वर व विदित-योग भी, कहते अनेक, एक ज्ञानी।
ज्ञान-स्वरूपी अमल-जिनेश्वर, गुण-समुद्र हो जग-नामी॥

★★★

आप; मोक्षमार्ग के उपदेशक, ब्रह्मा भी

25. विद्वज्जन से पूजित प्रभुवर, बुद्ध आप कहलाते हैं।
पूर्ण-जगत् को शांति-प्रदायक, शंकर-मय भी भाते हैं॥
मोक्षमार्ग के उपदेशक हो, अतः कहाते ब्रह्मा भी।
व्यक्त रूप से नर-उत्तम हो, कहलाते पुरुषोत्तम भी॥

★★★

त्रिलोक के प्रभु आप चरण में नम्र-प्रणाम

26. तीन-लोक के दुःख-हारक प्रभु, तव-चरणों में नम्र-प्रणाम।
पृथ्वीतल के आभूषण हो, तव-पद में मम नम्र-प्रणाम॥
परमेश्वर हो त्रिलोक के प्रभु, आप-चरण में नम्र-प्रणाम।
भव-जल के शोषक हे प्रभुवर, अतः आपको नम्र-प्रणाम॥

★★★

हे तीर्थंकर! अन्य जगह ना ऐसे गुणगण

27. हे तीर्थंकर! अन्य जगह ना, पाया जिनने आश्रय है।
ऐसे गुणगण आप-समाये, तव-पद बने उपाश्रय हैं॥
भरे अहं से दुर्गुण सारे, रागी-जन आधार लिये।
नहीं स्वप्न में दिखें आप में, ना होता आश्चर्य हिये॥

★★★

अशोक तरुवर मन भाता

28. उन्नत-अशोक-तरुवर-नीचे, ऊपर किरणे फैलाता।
ऐसा-उज्ज्वल रूप आपका, भव्य-जनों के मन-भाता॥
नष्ट किया हो तम-समूह वह, सूर्य रहे मेघों के पास।
किरणें शोभें उस सूरज की, शोक-नशाती सुख दें साथ॥

★★★

सिंहासन पर प्रभु महान

29. रत्नाग्रिम-किरणों से सुन्दर, सिंहासन पर प्रभो महान।
स्वर्ण-समा उज्ज्वल काया-सह, शोभें जिनवर गुण की खान॥
उच्च-गिरि के अग्र-भाग पर, नभ में रवि-किरणों के साथ।
ऐसे सूर्य-प्रभा मण्डल-सम, प्रभो शोभते नमते माथ॥

★★★

दोलित चँवरों से शोभें प्रभुवर

30. कुन्द-पुष्प-सम धवल स्वच्छ उन, दोलित चँवरों से शोभे।
सुवर्ण-समा तव कान्तिमान-वपु, उदित चन्द्र-सम मन लोभे॥
निर्मल-निर्झर की धारा-मय, जैसे स्वर्ण मेरु के कूल।
शोभा-पाते जल से भाते, जग-जन के हों बस अनुकूल॥

★★★

रवितापहारी छत्रत्रय

31. चन्द्र-समा बहु-सुन्दर उत्तम, रविकर ताप रहा हारी।
मुक्ताओं की झालर से भी, बढ़ती जिसकी छवि न्यारी॥
प्रभु आपके ऊपर ऐसे, छत्र-त्रय शोभा पाते।
तीन-लोक के स्वामी-पन को, छत्रत्रय वे बतलाते॥

★★★

दुन्दुभि यश का गायक, नभ में शोभा भरता

32. निज-गम्भीर व उच्च-स्वरों से, दिशा दशों को पूर दिया।
तीनों-लोकों के सब जीवों, -को शुभमय आह्वान किया॥
सम्यक्-जैन-धर्म के स्वामी, -की जय घोषण करता जो।
ऐसा दुन्दुभि यश का गायक, नभ में शोभा भरता वो॥

★★★

सौख्यकर कल्पवृक्ष के पुष्प वर्षा करते

33. परम-सुगन्धित जल की बूंदों, तथा सौख्यकर मारुत साथ।
श्रेष्ठ मनोहर पुष्प सु-सुन्दर, नमेरु मंदर पारिजात॥
सन्तान-कादि कल्पवृक्ष के, पुष्प सदा वर्षा करते।
तव-वचनों की पंक्ति-समा वे, -गिर, नभ से हर्षा करते॥

★★★

कांतिमान भामण्डल विशाल शोभे

34. तीन-लोक के कान्तिमान उन, -द्रव्यों की सब कान्ति को।
हरने-वाला तथा उदित उन, रवि-किरणों की कान्ति को॥
करे तिरस्कृत और चन्द्रमा,-सम सुन्दर दिखने वाला।
भामण्डल वह विशाल शोभे, रात्रि-तिमिर हरने वाला॥

★★★

जिन भगवन् की दिव्यध्वनि; सुख लाती

35. स्वर्ग, मोक्ष को जाने वाले, मार्ग खोजने मन-भाती।
तीन-लोक के जीवों को वह, सु-तत्त्व-मय गीता-गाती॥
विशद-अर्थ-सह सब भव्यों को, सब भाषा-मय हो जाती।
दिव्यध्वनि स्वभाविक गुण-सह, जिन-भगवन् की सुख-लाती॥

★★★

देवगण भाव भरे कमल रचाते

36. हे! जिनवर नव-खिले कमल वन, -सह तव-चरण सुशोभ रहे।
चउ-दिशि से सु-नखाग्र-कान्ति सह, भव्यों का मन-मोह रहे॥
जहाँ कदम प्रभु के पड़ते हैं, वहाँ देवगण भाव-भरे।
कमल-रचाते गुणगण गाते, प्रभु-सेवा उद्धार करे॥

★★★

तव सम विभूति अन्य देव के कहाँ?

37. हे! प्रभुवर इस तरह विभूति, धर्म-देशना हेतु रही।
तव-सम ना यह अन्य-देव के, कभी कहीं भी साथ रही॥
तिमिर-नाश को करने वाला, मात्र सूर्य ही कहलाता।
कहाँ अन्य वह ग्रह में होता, तव-सम प्रकाश जो भाता॥

★★★

उद्‌दण्डी गज के सामने आप शरण में भय न लगता

38. ऐरावत-सम गज जो जिसका, मद-जल मलिन हि झरता हो।
चञ्चल-गण्डस्थल पर मद से,-भ्रमर शोर भी होता हो॥
क्रोधी उद्‌दण्डी उस गज के, जहाँ सामने आने पर।
आप-शरण में भय न लगता, लख जिन तव-गुण गाने पर॥

★★★

सिंह भय से उभरे जिन भक्त

39. जिस हरि ने गज-गण्डस्थल को, विदीर्ण-कीना शक्ति-प्रबल।
रक्त-सहित उन मोती से भी, भूषित हुई थी भू-उज्ज्वल॥
ऐसा सिंह जो छलांग भरकर, आया हो जब भक्त-समीप।
उसके पाद-बीच से उभरे, वहीं भक्त जिन-चरण-समीप॥

★★★

तव यश का जल दावाग्नि से करे रक्षा

40. हे! प्रभुवर-तव यश का जल वह, प्रलय वायु-सह दावाग्नि।
प्रज्वल उज्ज्वल चिनगारी-सह, प्रगटे जहँ वह वा अग्नि॥
तथा सामने आती हो जब, जग-भक्षी होकर मानो।
ऐसी मारुत से रक्षा कर, अमृत-सा वर्षे जानो॥

★★★

प्रभो नाम क्रोधी उद्दण्डी नाग का भय हरता

41. रक्त हुए हैं नेत्र सर्प के, कोयल-कण्ठी जो काला।
उछल कूंद भी करता हो वा, अतिशय भी हो मतवाला॥
क्रोधी उद्दण्डी उत्फण बन, आता हो जब भवि-आगे।
प्रभो-नाम नागदमनी हिय, -धर, निःशंक हि भवि लांघे॥

★★★

जिनवर के यशोगान से युद्ध विघ्न टल जाते

42. युद्ध-क्षेत्र में उच्छृंखल वे, अश्व, गर्जते गज भी जो।
तथा भयंकर शब्द मचाती, बलशाली नृप-सेना जो॥
उदित-सूर्य की किरणाग्रों से, यथा तिमिर वह भग जाता।
जिनवर के गुण यशोगान से, विघ्न सभी झट टल जाता॥

★★★

जिनवर भक्त अजेय योद्धाओं से जय पाते

43. भालों के उस अग्रभाग से, हुए विदारित गज-गण जो।
रक्त-नदी से पार-उतरने, व्यग्र रहे शत्रु-गण वो॥
अजेय-योद्धाओं से लड़कर, जय पाते हैं भक्त वहाँ।
जिनके हिय में पाद विराजे,-जिनवर के वे पूज्य जहाँ॥

★★★

जिनवर नाम मात्र से भयकारी सागर तिरते भक्त

44. क्षोभ-प्राप्त भयकारी-सागर, मगरमच्छ जहँ दुखकारी।
अरु विकराल हि बड़वानल जहँ, लहर चपल संकटकारी॥
ऊँची-लहरों पर स्थित हो, जहाज में वे भविक जहाँ।
जिनवर-प्रभु के नाम-मात्र से, निर्भय तिरते भक्त वहाँ॥

★★★

जिन चरणों की रज जलोदर रोग हरती

45. प्रकट हुआ हो जहाँ जलोदर, उदर झुका हो भयकारी।
शोचनीय हो दशा मनुज की, निराश-जीवन दुखकारी॥
जिन-चरणों की रज को पाकर, अमृत-सम वह रोग हरे।
वीतराग की महिमा से भवि, कामदेव-सम रूप धरे॥

★★★

प्रभु तव नाम से अशेष बंधन कर जाते

46. जहाँ पाद से कण्ठ-सीम तक, बड़ी-बड़ी जंजीरों से।
सघन-बँधा नर बेड़ी से भी, घिसी जाँघ जंजीरों से॥
प्रभु-तव नाम हि मंत्र निरन्तर,जो ध्याता हो भक्त-विशेष।
शीघ्र-पुण्य के बढ़ने से जिन, कट जाते हैं बन्ध-अशेष॥

★★★

हे जिनेन्द्र! तव स्तवन सर्व विघ्न निवारक है

47. तव-स्तव से बुद्धिमान जो, मत्त-गजेन्द्र व सिंहादिक।
दावानल व क्रूर-सर्प उस, युद्ध, समुद्र व रोगादिक॥
रहे जलोदर बन्धन भी हो, या कितने हों भय के थान।
मानो भय से भग, नश जाते, पाते ना वे भवि स्थान॥

★★★

भक्ति रचित गुणमाला स्वर्ग मोक्षश्री वरे

48. हे! जिनेन्द्र जो मेरे द्वारा, भक्ति-रचित गुण की माला।
विचित्र-वर्णों पुष्पों से जो, सुंदर अतिशय-मय माला॥
जो भवि नित ही कण्ठहार-सम, धार, 'मान शुभ तुंग' वरे।
उसे स्वयं-वर स्वर्ग, मोक्ष श्री, 'आर्जवता' से शीश धरे॥

★★★

प्रशस्ति

49.वीर-मोक्ष पच्चीस सौ-सह हि, सैंतालिस संवत् जानो।
भक्तामर-अनुवाद हुआ है, उन्नत-भक्ति-सहित मानो॥
आदिनाथ-प्रभु शरण हमारे, मानतुङ्ग-आचार्य महान।
विद्यासागर-सूरि हमारे, 'आर्जवता' से करें प्रणाम॥

★★★

50. भक्तामर-स्तोत्र को, रचा करों से दौन।
रहा पवित्र-स्थान है, शुभमय लखनादौन॥

★★★

51. विद्या-गुरु की है कृपा, भक्तामर-अनुवाद।
सदा करेगा क्षेम यह, जिसे रहेगा याद॥

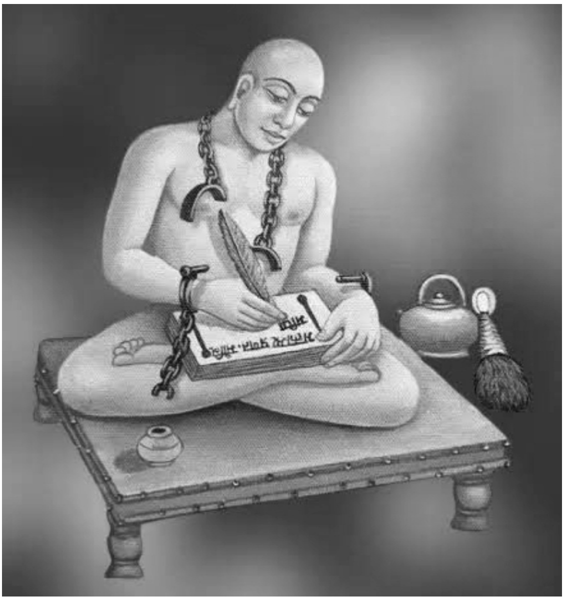

सैद्धान्तिक देव नेमिचन्द्र विरचित

द्रव्य संग्रह

का पद्यानुवाद

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

मंगलाचरण

1. जिन जिनवर श्री वृषभदेव ने, जीवाजीव सु-द्रव्यों का।
किया कथन था दिव्यध्वनि में, हो उद्धार हि भव्यों का॥
ऐसे इन्द्रों के समूह से, वंदित वृषभ-देव जिन को।
सदा हि मैं नत मस्तक होकर, नमन करूँ उत्तम जिनको॥

जीव के विशेष गुण

2. जीव रहा जो जीने वाला, वा उपयोग सहित वाला।
रहा अमूर्तिक कर्त्ता भी है, स्व-शरीर के सम वाला॥
भोक्ता है वा भव में थित है, तथा सिद्ध भी जीव रहा।
स्व स्वभाव से ऊर्ध्वगमन हो, ऐसा भी वह जीव कहा॥

नयों की विवक्षा से जीव का स्वरूप

3. जीव रहा व्यवहार दशा में, त्रिकाल में चौ प्राणों सह।
स्वाशोच्छ्वास वा आयु इन्द्रिय, बल भी जानो प्राणों सह॥
निश्चयनय से जिसके चेतन, दर्श, ज्ञान हि रहते प्राण।
कर्माश्रित प्राणों से विरहित, उस चेतन का हो निर्वाण॥

दर्शनोपयोग के भेद

4. रहा उपयोग हि द्विभेदों सह, दर्शनज्ञान मयी जानो।
दर्शन होता चार भेद सह, नाना जीवों का मानो॥
चक्षु, अचक्षु, अवधि-दर्शन, केवल-दर्शन भेद कहे।
छद्मस्थों के तीन कहे वा, केवलज्ञ के एक रहे॥

ज्ञानोपयोग के भेद

5. ज्ञान रहा है अष्ट भेद मय, मति श्रुत अवधि तीनों को।
ये अज्ञान व ज्ञान रूपमय, द्वि प्रकार जानो इनको॥
मनःपर्यय व केवलज्ञान, मिलकर ये सब अष्ट रहे।
ये प्रत्यक्ष, परोक्ष भेद से, द्वि प्रकार परमार्थ कहे॥

नय विवक्षा से जीव का पुनः लक्षण

6. व्यवहार नय से अष्ट तरह का, ज्ञान जिनागम मान्य रहा।
चार तरह का दर्शन भी यह, लक्षण जो सामान्य रहा॥
तथाहि विशुद्ध निश्चय नय से, शुद्ध दर्श व ज्ञान कहा।
लक्षण जानो जीव मात्र का, मानो सम्यज्ञान रहा॥

जीव का मूर्तिक और अमूर्तिक रूप

7. निश्चय नय से पाँच रसों वा, पंच वर्ण दो गंध तथा।
अष्ट स्पर्श जो न होते हैं, अतः अमूर्तिक जीव कहा॥
व्यवहार नय से विधि बंध हो, अतः मूर्त भी जीव रहा।
दोनों नय सम्यक्त्व रूप हैं, जिनवर ने उपदेश कहा॥

जीव के कर्तृत्व के विविध रूप

8. व्यवहार नय से रहा आत्मा, पुद्गल कर्मों का कर्त्ता।
अशुद्ध निश्चय नय से कहते, चेतन कर्मों का कर्त्ता॥
शुद्ध हि निश्चय नय से देखो, शुद्ध भाव का कर्त्ता है।
जिनवर-वाणी की यह उत्तम, अटल हि कर्म व्यवस्था है॥

जीव के भोक्तृत्व के विभिन्न रूप

9. व्यवहार से आत्मा सुख दुःख, पुद्गल कर्मज फल भोगे।
अरु निश्चय से देखो आत्मन्, निज चैतन्य भाव भोगे॥
व्यवहारी विषयों के सुख दुःख, भोगे कर्म संजोता है।
निश्चय से भावों का भोक्ता, सुखादि अनुभवि होता है॥

व्यवहार और निश्चय नय से जीव का परिमाण

10. व्यवहार से आत्मा भव में, समुद्घात को छोड़ जहाँ।
संकोच व विस्तार गुणों से, लघु, गुरु देह प्रमाण वहाँ॥
होता, निश्चय नय से आतम, असंख्यात प्रदेशी है।
देह धरे जब भव में होता, तन छूटे सिद्धेशी है॥

संसारी जीव के भेद

11. पृथ्वी जल व अनल वायु व, वनस्पति ये थावर जीव।
एकेन्द्रिय कायिक कहलाते, स्पर्शन धारक हैं जीव॥
त्रस में शंख आदि द्वीन्द्रिय, चीटी आदि त्रि-इन्द्रिय हैं।
भ्रमर आदि हैं चौइन्द्रिय व, मनुष्यादि पंचेन्द्रिय हैं॥ 11॥

चौदह जीव समास

12. संज्ञी और असंज्ञी संज्ञक, पंचेन्द्रिय हैं जीव रहे।
शेष असंज्ञी जीव रहे सब, मन के बिन ये जीव कहे॥
एकेन्द्रिय में रहे भेद दो, बादर, सूक्ष्म सदा मानो।
सभी सप्त हैं पर्याप्तक व, रहे अपर्याप्तक जानो॥

मार्गणा और गुणस्थान के भेद से जीव के भेद

13. वे संसारी अशुद्ध नय से, चौदह मार्गण में रहते।
तथाहि चौदह गुणस्थान में, रहते, यह जिनवर कहते॥
किन्तु विशुद्ध नय से देखो, सभी शुद्ध कहलाते जीव।
कर्म सहित इक, कर्म रहित इक, समझें, निजफल पाते जीव॥

सिद्ध जीवों का स्वरूप

14. अष्ट कर्म से रहित सिद्ध हैं, अष्ट गुणों से सहित रहे।
अन्तिम तन से कुछ कम वे हैं, लोक शिखर पर विलस रहे॥
नित्य रहे हैं द्रव्य रूप से, उत्पाद व व्यय निज में हो।
ऐसे सत् मय परमात्मा वे, बने पूज्य हैं चिन्मय हो॥

अजीव द्रव्य का कथन

15. तथाहि पुद्‌गल धर्म, अधर्म, अरु आकाश, काल जानो।
अजीव द्रव्य हैं चेतन विरहित, रूपवान पुद्‌गल मानो॥
रूपवान है पुद्‌गल मूर्तिक, शेष रूप बिन रहे सभी।
अतः अमूर्तिक कहलाते हैं, न नयनों से दिखें कभी॥

पुद्‌गल द्रव्य की दस पर्यायें

16. शब्द, बंध व सूक्ष्म, थूल तम, हैं संस्थान भेद छाया।
व उद्योत अरु आतप भी सह, पुद्‌गल की है सब माया॥
पुद्‌गल द्रव्य इन रूपों में, इस जग में रंग लाता है।
रागी बंधता राग करे अरु, त्यागी भव तिर जाता है॥

धर्म द्रव्य का स्वरूप

17. गमन सुपरिणत पुद्गल जीवों, को सहकारी जो बनता।
धर्म द्रव्य उसको पहचानो, ऐसा जिन आगम कहता॥
जैसे मछली के चलने में, जल निमित्त बनता जानो।
नहीं चलाये रुकते को वह, धर्म हठी न पहचानो॥

अधर्म द्रव्य का स्वरूप

18. रुकने वाले पुद्गल जीवों, को सहकारी जो बनता।
उसे अधर्म द्रव्य पहचानों, ऐसा जिन आगम कहता॥
जैसे छाया पथिक जनों को, रुकने में सहकारी हो।
नहीं रुकाये चलते को वह, अधर्म; ना हठकारी हो॥

आकाश द्रव्य का स्वरूप

19. जीवादिक सब द्रव्यों को जो, दे अवकाश समर्थ रहा।
कहते जिनवर नभ है जानो, विश्वमयी यह अर्थ रहा॥
रहे भेद हैं जिस नभ के द्वि, लोक, अलोक सदा जानो।
है अनन्त आकाश, लोक फिर, चौदह राजू पहचानो॥

आकाश द्रव्य के भेद

20. जितने नभ में धर्म, अधर्म व पुद्गल काल जीव रहते।
उतना लोकाकाश कहा है, तथा बाह्य अलोक कहते॥
पद फैला नर हाथ कमर पर, रखे खड़ेवत् लोक रहा।
ऊर्ध्व देव, जग मध्यहि नर, पशु, अधो नारकी लोक कहा॥

नयों की विवक्षा से काल द्रव्य का स्वरूप

21. परिणामादिक लक्षण वाला, अरु द्रव्य परिवर्तन रूप।
वह व्यवहार काल है जानो, समय घटिक आदि स्वरूप॥
जिसका लक्षण मात्र वर्तना, उसे काल निश्चय जानो।
है परमार्थ कीलवत् दूजा, चक्र समा पहला मानो॥

काल द्रव्य के प्रदेश

22. लोकाकाशि एक-एक उन, सर्व प्रदेशों पर रहते।
एक-एक वे रत्न राशिवत्, कालाणु उनको कहते॥
वे कालाणु निश्चय जानो, असंख्यात हैं, द्रव्य कहे।
निमित्त बनते परिवर्तन में, जहाँ-जहाँ वे द्रव्य रहे॥

द्रव्य और अस्तिकाय के भेद

23. ऐसे जीव अजीव भेद से, छह भेदों में द्रव्य कहा।
काल छोड़कर पाँच द्रव्य जो, उनको अस्तिकाय कहा॥
जीवत्वादिक स्वरूप से ये, भिन्न भिन्न कहलाते हैं।
नाशोत्पत्ति ध्रुव से सत्मय, रहे एक कहलाते हैं॥

अस्ति काय का स्वरूप

24. विद्यमान हैं पंच द्रव्य ये, अतः अस्ति जिनदेव कहें।
काय समा हैं बहु-प्रदेशी, अतः काय भी इन्हें कहें॥
जीव व पुद्गल धर्म, अधर्म, अरु आकाश पांच इनको।
एक प्रदेशी काल छोड़कर, अस्तिकाय मानो सबको॥

द्रव्यों की प्रदेश संख्या

25. एक जीव व धर्म, अधर्म, इनमें रहे प्रदेश असंख्य।
है आकाश अनन्तप्रदेशी, किन्तु लोक के रहे असंख्य॥
मूर्त्त द्रव्य पुद्गल जिनमें हों, संख्य, असंख्य नन्त जानो।
काल द्रव्य है एक प्रदेशी, अतः काय न पहचानो॥

उपचार से परमाणु में कायत्व

26. अनेक स्कन्ध प्रदेशी-पन की, एक प्रदेशी परमाणु।
रखे योग्यता अतः काय जिन, कहते उसको परमाणु॥
परमाणु उपचार कथन से, काय रूप है कहलाता।
दो आदिक परमाणु का वह-पिण्ड, स्कन्ध कहा जाता॥

प्रदेश का लक्षण एवं शक्ति

27. पुद्गल के अविभागी लघु उस, परमाणु से नभ जितना।
रोका जाता उसको निश्चय-से प्रदेश जानो उतना॥
सब अणुओं को थल देने में, वही प्रदेश समर्थ रहा।
अवगाहन अरु परिणमता की, बड़ी शक्ति है अर्थ रहा॥

पदार्थों का नाम निर्देश

28. आश्रव बंध व संवर अरु वे, कहे निर्जरा मोक्ष जहाँ।
जीव अजीव के भेद रहे हि, पुण्य पाप के साथ वहाँ॥
नव पदार्थ हैं कहलाते वे, उनका वर्णन यहाँ रहे।
वह संक्षिप्त हि कहते भवि को, मोक्ष-मार्ग में सुधा रहे॥

भावास्रव एवं द्रव्यास्रव

29. जिन परिणामों से आतम में, कर्मों का आना होता।
जिनवर द्वारा कथित उसे ही, भावास्रव कहना होता॥
जाने उसको द्रव्यास्रव भी, आते हों वे कर्म जभी।
कषाय योग हि रहते जब तक, न रुकते वे कर्म कभी॥

भावास्रव के भेद

30. प्रथम हि भावास्रव में कारण, मिथ्यात्व व अविरति जानो।
प्रमाद योग व क्रोधादिक ये, कषाय साथ हि पहचानो॥
क्रमशः भेद व पाँच पाँच व, पंद्रह तीन चार कहते।
ऊपर आते निचले छूटें, नीचे प्रत्यय सब रहते॥

द्रव्यास्रव का स्वरूप एवं भेद

31. ज्ञानावरणादिक का कारण, पुद्गल जब निज में आता।
बहु भेदों वाला वह पुद्गल, द्रव्यास्रव जो कहलाता॥
यथा झरोखे से रज आवे, वैसे कर्म सदा आवें।
पुण्य पाप मय कर्म सुजानो, आगम में जिनवर गावें॥

बन्ध तत्त्व का स्वरूप

32. जिस चेतन के निज भावों से, कर्म बंध जु बंधता है।
वही रहा है भाव-बंध वह, ऐसा आगम कहता है॥
कर्म प्रदेशों का आतम में, आपस में हो एकाकार।
दुग्ध नीर या आग लोह वे, जैसे मिलते हैं साकार॥

बन्ध के भेद और कारण

33. प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेश जो, चार तरह के बंध कहे।
प्रकृति प्रदेश योग से होते, कषाय से दो बंध रहे॥
स्थिति व अनुभाग बंध ये, कषाय कारण हैं होते।
यथाख्यात में यह दो छूटें, अयोगी बंध बिन होते हैं॥

भाव संवर और द्रव्य संवर

34. कर्मास्रव रुकने में कारण निज का जो परिणाम रहा।
वही भाव-संवर तुम जानो, रोके कर्म हि ज्ञान रहा॥
कर्मास्रव का रुक जाना ही, द्रव्य रूप संवर जानो।
व्रत लेने में संवर बढ़ता, मोक्ष-मार्ग में शुभ मानो॥

भाव संवर के भेद

35. व्रत वा समिति गुप्ति धर्म वा, अनुप्रेक्षा परिषह जय जो।
बहु भेदों वाला चारित भी, संवर जानो शुभमय वो॥
भाव रूप संवर हैं ये सब, कर्म-निर्जरा के कारण।
भव का अंत इन्हीं से होता, मोक्ष सुपद के हैं साधन॥

निर्जरा तत्त्व का स्वरूप एवं भेद

36. जिस चेतन परिणाम हेतु से, स्वकाल अथवा तप से जो।
भोगा गया हि फल जिसका हो, ऐसा कार्मण पुद्गल वो॥
झड़ता है तब भाव निर्जरा, आगम कहता है जानो।
पुद्गल कर्म झड़े मात्र तब, द्रव्य निर्जरा तुम मानो॥

मोक्ष तत्त्व का स्वरूप एवं भेद

37. जो चेतन परिणाम सर्व उन, कर्मों के क्षय का कारण।
होता है जब उसको जानो, भाव-मोक्ष है वह पावन॥
तथाहि कर्मों का हट जाना, द्रव्य-मोक्ष कहलाता है।
है कैवल्य जु भाव-मोक्ष वह, द्रव्य-मोक्ष शिव दाता है॥

पुण्य और पाप

38. शुभ-भावों सह सर्व जीव वे, पुण्य रूप मय होते हैं।
अशुभ-भाव से सर्व जीव वे, पाप रूप मय होते हैं॥
सातामय वेदनीय शुभायु, वा शुभ-नामकर्म जानो।
उच्च गोत्र सह पुण्य प्रकृतियां शेष पाप ही सब जानो॥

मोक्ष का कारण (निमित्त)

39. व्यवहार नय से समदर्शन वा, ज्ञान चरण यह शिव-पथ है।
निश्चय नय से तीनों मय निज, आतम जानो शिव-पथ है॥
धर्म-क्रिया हो व्यवहारी की, निश्चय में निर्वृत्त रहे।
व्यवहारी मुनि सराग युत वा, निश्चय में निज रक्त रहे॥

रत्नत्रय स्वरूप आत्मा मोक्ष का निश्चय कारण

40. आत्म बिना वह अन्य द्रव्य में, रत्नत्रय न रहता है।
इस कारण से रत्नत्रय मय, निज ही कारण शिव का है॥
निज श्रद्धा ही समदर्शन है, निज जाने ही सम्यग्ज्ञान।
निज में रमना वह चारित है, मिलें तीन, निज शिवपथ जान॥

सम्यग्दर्शन से ज्ञान में समीचीनता

41. जीवादिक तत्त्वों की श्रद्धा, सम्यग्दर्शन कहलाती।
वही आत्म का निज स्वभाव है, यह जिनवाणी बतलाती॥
समदर्शन से ज्ञान शुद्ध हो, संशय आदिक मिट जाता।
हटें विपर्यय आदि सभी वे, ज्ञान हि सम्यक् बन जाता॥

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

42. निज आतम व पर पदार्थ में, संशय और विपर्यय जो।
तथाहि अनध्यवसाय कहिये, जब हटते मिथ्या सब वो॥
ऐसा तब ही समीचीन वह, ज्ञान सदा कहलाता है।
ज्ञान, साकार हि भेद अनेक, सहित आत्म सुख दाता है॥

दर्शन का स्वरूप

43. जो पदार्थ को ना विशेषकर, ना आकार ग्रहण करके।
गहता हो सामान्य रूप से, पदार्थ हि वह गह करके॥
वह शास्त्रों में दर्शन जानो, निराकार सामान्य रहे।
है साकार हि ज्ञान कहा जो, उससे दर्शन भिन्न रहे॥

दर्शन और ज्ञान का साहचर्य

44. अल्प ज्ञानियों का दर्शन वह, ज्ञान सु-पूर्वक हो जानो।
क्योंकि युगपत् ज्ञान व दर्शन, ना उपयोग कहा जानो॥
किन्तु केवली के युगपत् वे, दर्शन ज्ञान सुसाथ रहे।
पूर्ण ज्ञान पा बने केवली, धन्य त्रिलोकी नाथ रहे॥

व्यवहार चारित्र का स्वरूप एवं भेद

45. नय व्यवहार रूप से भव में, -अशुभ क्रिया से छूटे जो।
मोक्षमार्ग की धर्म क्रिया में- लगे, पाप से छूटे वो॥
जिनवर द्वारा कथित चरित है, उसी चरित में भेद कहे।
पंच व्रतों व पांच समिति सह, तीन गुप्ति मय भेद रहे॥

निश्चय चारित्र का स्वरूप

46. भव बंधन के कारण छूटें, अतः ज्ञानि का चारित वह।
बाह्याभ्यन्तर क्रिया रोकना, होता निश्चय चारित वह॥
यह चारित जिनदेव कथित है, जिसको जाने भविक सदा।
वीतराग मुनिवर पाते यह, निर्मोही वे क्षपक मुदा॥

ध्यानाभ्यास करने की प्रेरणा

47. जिस कारण से मुनिवर दोनों, प्रकार के शिव साधन को।
ध्यानी बनकर पाते निश्चित, ऐसे भविजन कारण को॥
तुम भी पाकर पुरुषार्थी बन, ध्यान धार अभ्यास करो।
भली -भांति हि भव सुख तजकर, निज-सुख में तुम वास करो॥

ध्यान की एकाग्रता का उपाय

48. विविध रूप ही ध्यान सिद्धि हो, अतः चित्त को थिर करना।
चाहो तुम, तो इष्ट विषय व, अनिष्ट में समता रखना॥
मोह राग व द्वेष तजो तुम, इष्ट अनिष्ट समागम में।
भव शरीर व भोग भूलकर, रत हो जाओ आतम में॥

मन्त्र पदों की जाप्य और ध्यान

49. पंच परम उन परमेष्ठी के, वाचक अक्षर हैं पैंतीस।
सोलह, छह वा पाँच, चार, दो, इक अक्षर में बसते ईश॥
इन सब ही अक्षर मंत्रों को, जपो सदा वा ध्यान करो।
तथाहि देवें मंत्र गुरु जो, जपो सदा कल्याण करो॥

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप

50. नष्ट हुए हैं घातिकर्म जहँ, दर्श ज्ञान सुख शक्ति मिली।
अनन्त चतुष्टय प्राप्त किया व, केवल ज्योति जिन्हें जगी॥
शुभ हि परमौदारिक तन में, थित हैं शुद्ध परम आतम।
हैं अरिहंत जगत् परमेष्ठी, ध्यान योग्य हैं जो आतम॥

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप

51. अष्ट कर्म तन नष्ट हुये हैं, लोकालोकी शुद्धातम।
जिस नर तन से शिव को पाया, पुरुषाकारी वह आतम॥
सिद्ध परम परमेष्ठी ऊपर, लोक शिखर पर सदा रहें।
करो ध्यान हो कर्म निर्जरा, फिर गम देखो कहां रहे॥

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

52. दर्शन ज्ञान प्रधान धारते, वीर्य चरित व तप आचार।
जिसमें रत हो स्वयं तथाहि, करवाते सबको आचार॥
ऐसे हैं आचार्य-मुनि वे, परमेष्ठी का रूप धरें।
करें ध्यान हम सदा योग्य उन, गुरुवर सम हि रूप वरें॥

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप

53. जो रत्नत्रय युक्त रहें नित, धर्म उपदेश करें जन को।
वे मुनियों में उत्तम प्यारे, उपदेशक भाते जन को॥
उपाध्याय उन परमेष्ठी को, नमन सभी का पूर्ण रहे।
ज्ञान गहें सब चारित पालें, मिले हि सुख संपूर्ण रहे॥

साधु परमेष्ठी का स्वरूप

54. जो नित, बिन रागादि विशुद्ध, मोक्षमार्ग अनुकूल सदा।
दर्श ज्ञान से पूर्ण चरित को, साधे उत्तम सुखद मुदा॥
वह मुनि साधु परमेष्ठी है, उसको नमन हमारा है।
कर्मनाश हों शिवपथ चलकर, भव का मिले किनारा है॥

साधु के निश्चय ध्यान की योग्यता

55. जब-जब जैसा जो कुछ भी वह, चिंतन करता साधु जहाँ।
ध्यान एकत्व प्राप्त करे वा, इच्छा विरहित रहे वहाँ॥
तब-तब वैसा में उस साधु का, निश्चय ध्यान कहा जाता।
क्योंकि न हो राग-द्वेष कुछ, वीतराग वह कहलाता॥

आत्मलीनता का उपाय

56. कुछ भी चेष्ठा नहीं करो तुम, वचनों से भी न बोलो।
विचार भी तुम मत करना वा, लीन आप में थिर हो लो॥
ऐसा करने से आतम यह, ध्यान लीन हो जाती है।
ऐसा ही है परम ध्यान वह, जग में आत्म सुहाती है॥

ध्यान के साधन तप, श्रुत और व्रत

57. जिस कारण से तप श्रुत व्रत मय, आत्म ध्यान रूपी रथ की।
धुरी धार जो कहलाती है, उन तीनों मय शुभ रथ की॥
प्राप्ति हेतु हि सदा निरत हो, तप श्रुत वा व्रत तीनों में।
कर्म निर्जरा करो, मोक्ष पा, फैले यश जग तीनों में॥

ग्रन्थकर्त्ता की नम्रता और लघुता

58. अल्पश्रुती मुनि नेमिचन्द्र ने, जो कुछ कहा हि इस कृति में।
सुधी द्रव्यसंग्रह को शोधें, निर्दोषी मुनिवर कृति में॥
पढ़ें भव्य इस कृति को नियमित, जिनवाणी का मर्म मिले।
'आर्जवता' से शिवपुर पहुँचे, जहाँ निजातम शर्म मिले॥

प्रशस्ति

59. तारंगा शुभ क्षेत्र पर, हुआ सुवर्षायोग।
द्रव्य सु-संग्रह शास्त्र को, पढ़ा, बढ़ाया योग॥

★★★

60. वर्षा-योग सुयोग में, बढ़ी विशुद्धि साथ।
चिन्तन, मंथन नित बढ़ा, आगम लेकर हाथ॥

★★★

61. हुआ पद्य अनुवाद शुभ आगम ग्रन्थ महान।
संभव पद में हो नमित, जगा भाग्य संज्ञान॥

★★★

62. भगवत अतिशय से सभी, काम सुलभ हों नेक।
आत्म ज्ञान व ध्यान मय, जहाँ आत्म अभिषेक॥

★★★

63.जहँ वरांग सु-केवली, सायरदत्त मुनीन्द्र।
साढ़े त्रय कोटि मुनि-सह वरदत्त मुनीन्द्र॥

★★★

64.गये मोक्ष के धाम को, ध्यान किया था सार्थ।
अनंत सुख को प्राप्तकर, फल पाया परमार्थ॥

★★★

66.**आर्जव** भावों से नमें, कर्मों का क्षय होय।
सागर सम गहराई में, भव का गम सब खोय॥

★★★

66.**रचित** रहें हम ध्यान में, समता हो साकार।
द्रव्य भाव हो शुभ सदा, प्रभु सम हो आकार॥

★★★

67.**संग्रह** गुण का खूब हो, आत्म बने भण्डार।
शास्त्र ज्ञान से सुख मिले, आत्म होय भव पार॥

★★★

69.**पद्य** पढ़ें प्रतिभा बढ़े, राजित होता धर्म।
अनुवाद में ज्ञान भी, -मँजता, बढ़ता धर्म॥

★★★

70.नित्य पढ़ेंगे काव्य यह, सदा रहेगा याद।
मगसिर कृष्णा ग्यारसी, पूर्ण हुआ अनुवाद॥

★★★

71.वीर प्रभु का मोक्ष शुभ, पच्चीस सौ व्यालीस।
पद्य पढ़ें अनुवाद के, पावें गुण छयालीस॥

★★★

72.अभीक्ष्ण हो नित ज्ञान में, हम सबका उपयोग।
कर्म कटेंगे शीघ्र ही, मिले मोक्ष सुख भोग॥

आचार्य पूज्यपाद विरचित

इष्टोपदेश

का पद्यानुवाद

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

मंगलाचरण

1. जिस आतम को सब कर्मों के, हटने से अपने हि आप।
निज स्वभाव की प्राप्ति हुई है, सभी गलाये जिसने पाप॥
ज्ञान अनन्त स्वरूपी जिनवर, परमातम को नमता मैं।
शुक्ल ध्यान पा कर्म नशाऊँ, शुद्धातम की समता में॥

निमित्तोपादान से सिद्धि

2. सुयोग्य उपादान के मिलने - से जब ज्यों स्वर्ण पाषाण।
उससे स्वर्णपना प्रकटित हो, उसी तरह यह आतम जान।।
उत्तम द्रव्य सु-क्षेत्र तथा उस, कालादिक के मिलने पर।
जीवातम हि शुद्ध स्वरूपी, बनती, साधन मिलने पर॥

व्रतों की सार्थकता

3. यहाँ व्रतों के पालन द्वारा, सुर-पद पाना उत्तम है।
किन्तु पाप से नारक होना, अहो! कभी ना उत्तम है॥
क्योंकि छाया और धूप में, बसे प्रतीक्षित राही के।
बड़ा फरक है सुख-दुख मिलते, ज्ञानी व अज्ञानी के॥

शिव प्रद भावों से स्वर्ग सहज ही

4. इस आतम को जिन भावों से, मोक्ष महा सुख मिलता है।
उन भावों से स्वर्ग लोक वह, कहाँ दूर फिर रहता है॥
जो नर बोझा लेकर जल्दी, दो कोशों भर जा सकता ।
अर्धकोश के चलने में क्या, वह कदापि है थक सकता ?

स्वर्ग सुख का कथन

5. स्वर्ग लोक में देवों का सुख, अक्ष जनित दुख रहित रहा।
बहुत काल तक सेव्य योग्य सुख, रोगादिक से रहित रहा॥
ऊपर स्वर्गों में रहते सुर, जैसे सुख का भोग करें।
वैसे ही अनुपम उस सुख का, ऊपर जा सुर भोग करें॥

इन्द्रिय सुख-दुख भ्रान्ति मात्र

6. भव में जीवों के इन्द्रिय सुख, तथा दुख्ख भी जहाँ कहे।
मात्र वासना भ्रममय वे सब, पूर्ण जगत में यहाँ रहे॥
इन्द्रिय सुख के भोग सभी वे, आपत्ति के उस क्षण में।
रोगों के सम व्याकुल करते, दुख देते हैं पल-पल में।।

मोहावृत ज्ञान वस्तु-स्वरूप नहीं जानता

7. महामोह से ढका हुआ जो, ज्ञान सदा इस जीवन में।
स्व स्वभाव को नहीं जानता, भटके मानव भव वन में॥
जैसे मादक कोदों के उन, दानों को खा लेने से।
भेद लखे नहिं इष्ट, अनिष्ट, पदार्थ के पा लेने से॥

मोही, पर पदार्थ को अपना मानता है

8. तन, गृह, धन, महिलायें ये सब, पुत्र, मित्र व शत्रु सभी।
रहें हमेशा अन्य स्वभावी, मोही अपने कहे सभी॥
आखों से दिखने वाले सब, पदार्थ पुद्‌गलमय जानो।
नहीं दिखे आतम जो अपनी, स्व स्वभाव उसमें जानो॥

संसारी जीव का कुटुम्ब परिवार कैसा है?

9. वृक्ष-वृक्ष पर सभी दिशाओं, से आकर वे पक्षीगण।
बस जाते हैं एक जगह पर, कलरव करते पक्षीगण॥
जैसे ही प्रभात हो वैसे, निज-निज सु-कार्यवश होकर।
भिन्न-भिन्न देशों को जाते, सर्व दिशाओं में उड़कर॥

अहितकर के प्रति क्रोध व्यर्थ

10. अपने अपकारक के ऊपर, क्रोध करें तो व्यर्थ रहा।
क्योंकि अपकारक वह अपना, अहित करे यह अर्थ रहा॥
जहाँ फावड़े से भू खोदे, वहाँ स्वयं जो झुकता है।
दण्डे से वह नीचे ऊपर, होता दुख को सहता है॥

संसार में जीव किस तरह घूमता है

11. संसारी यह प्राणी जग में, चिरकालों से अज्ञानी।
घूम रहा चारों गतियों में, ऐसा कहते हैं ज्ञानी॥
दो रस्सी के जहाँ योग से, यथा मथानी फिरती है।
भव में भटके राग-द्वेष से, आतम दुख में पड़ती है॥

कोई न कोई विपत्ति मौजूद ही रहती है

12. भव रूपी जिस घटी यन्त्र में, घरियाँ भरती, खाली हों।
इसी तरह से भव विपत्तियाँ, फिर-फिर आने वाली हों॥
एक आपदा पूर्ण नहीं हो-पाती दूजी आती है।
एक करे वह दुखी आपदा, दूजी फिर उलझाती है॥

हर स्थिति में धन दुःखकर

13. अति कठनाई से अर्जित हों, तथा सुरक्षित न रहते।
नश्वर हैं वे धन पुत्रादिक, फिर जो इनको सुख कहते॥
घृत को पीकर ज्वर से पीड़ित, जैसे मानव मूढ़ रहा।
अज्ञानी वह कहलाता है, धन में जो सुख ढूढ़ रहा॥

संसारी प्राणी दूसरों का दुःख देखता है

14. भरा मृगादिक जीवों से वन, महा आग से झुलस रहा।
उस ही वन में तरु पर बैठा, देख दृश्य जो मनुष रहा॥
कितना मूर्ख रहा वह प्राणी, देख विपत्ती दूजे की।
अपनी भी ना समझे आपद, राह ये दुख नतीजे की॥

लोभी को धन इष्ट है

15. समय बीतना आयु क्षय अरु, धन के बढ़ने का कारण।
लोभी सोचे काल बीतना, ब्याज वृद्धि का है साधन॥
किन्तु ना वह, विचार करता, निज जीवन घट जायेगा।
जीवन से भी अधिक इष्ट धन, किन्तु साथ न जायेगा॥

त्याग के लिए संग्रह उचित नहीं

16. निर्धन प्राणी दान, पुण्य के, कारण धन संचय करता।
मैं स्नान करूँगा ऐसा, सोच पंक लेपन करता॥
धन अर्जन में पञ्च पाप अरु, आरम्भादिक होते हैं।
धर्म हेतु जन धन अर्जनकर, बुद्धिवन्त न होते हैं॥

हर स्थिति में भोग कष्टकर

17. भोग प्रथम संताप देयँ रु, मिलने पर तृष्णा बढ़ती।
तथा अंत में कठनाई से, छूटें अग्नि-सी जलती॥
ऐसे विषय-भोग को रुचि से, कैसे? कोई ज्ञानी वह।
सेवेगा; फिर बुद्धिवन्त ना, दुःख पाये अज्ञानी वह॥

अपवित्र शरीर की कामना व्यर्थ

18. जिसकी संगत पाकर पावन, पदार्थ अशुचि होते हैं।
जिस तन में वे क्षुधा, तृषा सब, दुख भी पैदा होते हैं॥
ऐसे तन को खिला, पिलाकर, पुष्ट जहाँ यह तन करना।
व्यर्थ भोग वे सुख सुविधाएँ-देकर, कर्मों से बंधना॥

उपकारक/अपकारक

19. आतम का उपकारक जो है, तन का वह अपकारक हो।
तन का उपकारक जो कारज, आतम का अपकारक हो॥
भोग रहे तन के उपकारक, तप जिय के उपकारक हो।
तन सुख कर्म बंध देता अरु, चेतन सुख शिव कारक हो॥

विवेकी किसमें आदर करे

20. एक तरफ तो दिव्य रत्न शिव, चिन्तामणि शुभ मिलता है।
और दूसरी ओर खली का, टुकड़ा भव सुख मिलता है॥
ये दोनों फल ध्यानों द्वारा, जीवों को फिर मिलते हैं।
ज्ञानी भव न, शिव सुख चाहे, अनन्त सुख-दल खिलते हैं॥

आत्मा का स्वरूप

21. यह आतम निज अनुभव द्वारा, निज में जाना जाता है।
तन प्रमाण है अविनाशी है, अनन्त सुख उपजाता है॥
लोकालोकी पूर्ण विश्व को, जाने देखे आतम में।
सिद्ध स्वरूपी बनकर आतम, सदा लीन निज आतम में॥

आत्मध्यान करने का उपाय

22. आतम इन्द्रिय समूह को नित, संयमित करके ध्यान करे।
एक चित्त हो अपने भीतर, स्थिरता का ज्ञान करे॥
अपने द्वारा अपने निज का, चिन्तन निशि-दिन किया करे॥
पाप-विषय तज, सद् ध्यानों से, निज चेतन रस लिया करे॥

जो है उसी का दान

23. अज्ञानी की उपासना वह, अज्ञानी कर देती है।
ज्ञानी आतम की उपासना, ज्ञानी पद को देती है॥
जग जाने यह, जहाँ जो वस्तु, जिसके हो वह ही देता॥
रागी अपने रंग में रंगता, त्यागी निज-सम कर लेता॥

आत्म-ध्यान का फल

24. आत्म-ध्यानमय अध्यातम से, परीषहादि न अनुभव हों।
तभी निरास्रव करने वाली, शीघ्र निर्जरा उद्भव हो॥
संवर पूर्वक कर्मों का वह, गलन जहाँ पर होता है।
तभी निकट उस भवि आतम को, शिवपुर दूर न होता है॥

एकत्त्व में सम्बन्ध नहीं

25. मैं चटाई का कर्त्ता हूँ यह, कर्त्ता-कर्म रहे सम्बन्ध।
जो होता है भिन्न-भिन्न उन, दो पदार्थों में सम्बन्ध॥
लेकिन जब वह ध्यान ध्येय निज, आतम ही हो तब जानो।
भिन्न नहीं हो कर्त्ता-कर्मी, सभी एक निज में जानो॥

बन्ध और मुक्ति के कारण

26. बँधे छूटता क्रमशः प्राणी, ममता, निर्ममता वाला।
अतः पूर्ण पुरुषार्थी बनकर, निर्ममता का पी प्याला॥
रागी विषयों को चाहे जो, कर्म बंध बँध जाता है।
वैरागी वह कर्म नाशकर, मुक्ति सुपद को पाता है॥

निर्ममता की सिद्धि योग्य विचार

27. मैं एकाकी ममता विरहित, शुद्ध ज्ञान स्वरूपी हूँ।
तथा योगियों के द्वारा मैं, ज्ञेय योग्य अरूपी हूँ॥
सब संयोगज पदार्थ जितने, मुझसे बिलकुल भिन्न रहे।
ऐसा चिन्तन करता ध्यानी, परीषह में न खिन्न रहे॥

सम्बन्धों को त्यागने की प्रेरणा

28. संयोगों से भव में जिय को, दुख समूह का भागीदार।
बनना पड़ता है; इस कारण, जिनमें सुख न वे निस्सार॥
इन संयोगों को मैं मन-वच, तन के कर्मों से तजता।
सद् ध्यानी व शुद्ध स्वरूपी, बनूँ गुणों से नित सजता॥

पौद्गलिक परिणति मेरी नहीं

29. मेरा नहीं मरण होता है, फिर भय मुझको कहाँ रहे।
तथा रोग भी न हो मुझमें, दुःख क्या मुझको वहाँ रहे॥
बालक, बूढ़ा, युवा नहीं मैं, ये सब बातें तन में हैं।
मेरी आतम अजर अमर है, गुण अनन्त चेतन में हैं॥

ज्ञानी की अनासक्त बुद्धि

30. पुद्गल के जितने परमाणु, उनको मोही बन मैंने।
बार-बार भोगा, छोड़ा है, विषयों का सुख रस लेने॥
अतः रहे जो जूठन-सदृश, सारे पुद्गल हैं जिनमें।
अभिलाषा कैसे हो सकती, मुझ ज्ञानी के जीवन में?॥

सभी अपना प्रभाव बढ़ाते हैं

31. कर्म स्वयं के हितकारक उन, जड़ कर्मों का बन्ध करे।
तथा आत्मा स्व-हित करने, मोक्ष-मार्ग सम्बंध करे॥
अपना-अपना प्रभाव जग पर, होने पर फिर कौन यहाँ।
अपना हित न चाहे जग में, नहीं बैठते मौन वहाँ॥

आत्मोपकारी बनने का उपदेश

32. पर के सब उपकारों को तज, निज उपकारी तू बन जा।
पर का मोही असद् ध्यान तज, निज का ध्यानी तू बन जा॥
दिखाई देने वाले जग में, अज्ञ सदा पर उपकारी।
दिखते हैं, पर ध्यानी आतम, निज में निज से निजकारी॥

भेदविज्ञान का उपाय और फल

33. जो आतम गुरु सदुपदेश से, अभ्यासी निज अनुभव से।
स्व अरु पर के भेद ज्ञान को, जाने वैरागी भव से॥
ऐसा मानव शुद्ध बोध से, कर्मों का क्षय कर देता।
अनन्त सुख का स्वामी बनकर, शिवपुर को तब लख लेता॥

निजात्मा ही गुरु है

34. अपने में ही उत्तम सुख की, अभिलाषा से भवि आतम।
प्रिय पदार्थ का जानकार बन, शिव चाहे वह शुद्धातम॥
स्वयं आप अपने ही हित में, प्रवृत्ति जिसकी होने से।
वह आतम अपना ही गुरु है, संग निवृत्ति होने से॥

निमित्त सहायक मात्र है

35. अज्ञानी वह ज्ञानीपन वा, ज्ञानी वह अज्ञानीपन।
ना पाते हैं अन्य किसी से, उपादान है स्वामीपन॥
होता उपादान वह कारण, जिससे ज्ञानी, अज्ञानी।
बनता प्राणी, निमित्त गुरु वे, धर्म द्रव्य सम हों ज्ञानी॥

निजात्म चिन्तन कौन, कैसे करे?

36. जिसका मन वह क्षोभ रहित है, तत्त्व विचार में स्थिरता।
ऐसा योगी निर्जन थल में, निष्प्रमाद आसन धरता॥
अपनी आतम के स्वरूप का, चिन्तन नित अभ्यास करे।
शीघ्र मिले शिवपद की मंजिल, ऐसा अथक प्रयास करे॥

आत्मसंवित्ति की पहिचान

37. जैसे-जैसे जहाँ समाता, अनुभव में सु-तत्व महा।
वैसे-वैसे सुलभ प्राप्त हि, ना रुचते हैं भोग वहाँ॥
आत्म द्रव्य की अनुभूति जब, जिस योगी को होती है।
चक्री सम वह भोग संपदा, फीकी पड़ती रोती है॥

पहिचान आत्मसंवित्ति की

38. जैसे जैसे सुलभ भोग वे, नहि रुचते इस आतम को।
वैसे-वैसे अनुभव में सम-रस मिलता शुद्धातम को॥
बिन माँगे वे विषय भोग भी, ना भाते हैं चेतन में।
प्रतिभासित होता है उत्तम-तत्त्व तभी इस चेतन में॥

अनुभूति बढ़ने पर विचार परिणति

39. जब जग सारा इन्द्रजाल सम, सार रहित यह लगता है।
तब प्राणी को निज स्वरूपी, बनने को हिय कहता है॥
ऐसी रुचि जब शुद्धातम की, इस आतम में जगती है।
मन बाहर भागे तो आतम, मीन समान तड़फती है॥

योगी की निर्जन प्रियता

40. निर्जन थल पर जिसे ठहरना, उत्तम प्रतीत होता है।
एकान्तवासि आत्म अनुभवि, आत्म ध्यान रत होता है॥
अपने किसी कार्य वश जिसको, कुछ वच कहना हो तो भी।
समिति पूर्वक शीघ्र वचन कह, भूले वह इस तन को भी॥

स्वरूप निष्ठ योगी की विशेषता

41. आत्म तत्त्व में स्थिर रहने, वाला उत्तम जो योगी।
बोले तो भी नहीं बोलता, चलता किन्तु अचल योगी॥
देखे तो भी नहीं देखता, क्योंकि निज का ध्यान रहा।
राग, द्वेष तज क्रिया पाप जो, निज ध्याये आराम रहा॥

योगी की निर्विकल्प दशा

42. आत्म ध्यान में लीन साधु जो, क्या है? कैसा? किसका है?
किस कारण से और कहाँ है ? इसमें ना मन जिसका है॥
निज शरीर भी न जाने फिर, अन्य पदार्थ कहाँ जाने।
ना विशेष जाने विषयों को, चेतन में रमना जाने।।

जो जहाँ रहे, वहाँ रम जाता

43. जो प्राणी जिस थल पर रहता, वह प्राणी उस थल पर ही।
करे प्रेम वा रमे जहाँ पर, ध्यान करे उस थल पर ही॥
ऐसे थल को छोड़ जीव वह, अन्य जगह न जाता है।
क्योंकि अपने कार्य योग्य वह, अन्य स्थल नहि भाता है॥

साम्यभावि योगी कर्मों से छूटता है

44. शरीरादि के विशेषणों में, जो अनजानी बनता है।
नहीं ध्यान उन विषयों का तब, नहीं कर्म वह बँधता है॥
ऐसा प्राणी कर्म बन्ध से, छूटे निश्चित भवि जानो।
शिव पद में फिर सदा काल ही, सुख में रमता है जानो॥

सुख दुःख के आधार

45. अन्य वस्तु वह अन्य रही है, अन्य वस्तु से दुख होता।
तथा आत्मा निज का ही है, जिससे हमको सुख होता॥
इसी हेतु उन महान पुरुषों–ने निज को पुरुषार्थ किया।
निज में ही फिर निज को पाया, शिव पाने भव सार्थ किया॥

पर के अनुराग का फल

46. जो मूरख बहिरातम, पुद्‌गल–द्रव्यों का स्वागत करता।
ना छोड़ें वे कदापि पुद्‌गल, चारों गतियों में भ्रमता॥
निजी स्वार्थ हेतु जग द्रव्यों, को रस जिसके युत आता।
उसका साथ शीघ्र ना तजता, वह, ऐसा आगम गाता॥

स्वरूप निष्ठता

47. जो व्यवहार चरित से बाहर, ठहरे, निज में लीन रहें।
आत्म–ध्यान से अपूर्व सुख पा, ऐसे मुनि स्वाधीन रहें॥
क्रिया चले तब व्यवहारी यति, नहीं आत्म का ध्यानी हो।
क्रिया छोड़ता, निश्चय में जा, मुनि निज अमृत पानी हो॥

आनन्द का कार्य

48. आत्मध्यान का महानन्द वह, सदा बहुत विधि ईंधन को।
यथा जलाता तथा बाह्य दुख, परिषहादि जग क्रन्दन को॥
सहता समता सह वह योगी, आत्म ध्यान में रत रहता।
मोक्ष सौख्य का पुरुषार्थी वह, शिव पाता जिनमत कहता॥

मुमुक्षु क्या करे?

49. जग अज्ञान तिमिर की नाशक, परम आत्म की ज्योति महान।
महत् ज्ञानमय रूप कही है, मोक्षार्थी को सुख की खान॥
मुमुक्षुजन वे उसी ज्योति के, विषयक पूछें तत्त्व सदा।
पाने ज्योति व जिसे देखने, प्रयत्न शील निज रक्त सदा॥

तत्त्व का सार

50. जीव अलग है पुद्गल भी वह, निज-चेतन से विलग रहा।
यही तत्त्व का सार कहा है, जाने भवि जो सजग रहा॥
इसके आगे जो कुछ वर्णन, धर्म विषय का करते हैं।
चेतन और अचेतन का ही, विस्तृत वर्णन करते हैं॥

इष्टोपदेश ग्रन्थ के अध्ययन का फल।

51. भव्य बुद्धि इष्टोपदेश को, विधिवत् जो अध्ययन करते।
निज आतम के श्रेष्ठ ज्ञान से, मान-अपमान हैं तजते॥
हठ-आग्रह तज, ग्राम, वनों में, शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं।
''आर्जव'' बन वसुकर्म नाशकर, बने सिद्ध शिव पाते हैं॥

प्रशस्ति

52. इष्टोपदेश आचार्य ये, पूज्यपाद का जान ।
अध्यातम भण्डार का, देता सम्यग्ज्ञान ॥ 52॥

★★★

53. श्रुत पञ्चमी पर्व पर, पूर्ण हुआ अनुवाद।
नगर "अमरपाटन" जहाँ, मिला ज्ञान का स्वाद ॥53॥

★★★

54. ग्यारह दिन में शास्त्र यह, पूर्ण हुआ शुभ योग।
पच्चिस सौ तेतीस ये, वीर मोक्ष का योग॥ 54॥

★★★

55 जो भविजन मन योग से, पढ़ते यह उपदेश।
'आर्जव' बन सुखधाम हों, शिव जा आत्मप्रदेश ॥55॥

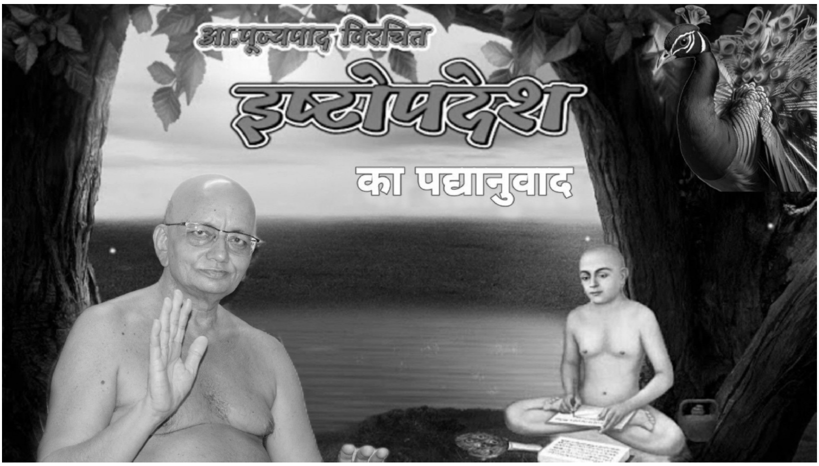

स्वामि पूज्यपाद आचार्य विरचित

समाधितन्त्र

का पद्यानुवाद

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

मंगलाचरण

1. सकल सिद्ध जिस परमात्मा ने, निज को निज से ही जाना।
कर्मजनित सब पर्यायों को, पर स्वरूपहि पहचाना॥
ऐसे अविनाशी अनन्त उन, ज्ञानमयी सिद्धात्मा को।
नमन करूँ नतमस्तक होकर, गहूँ पूर्ण शुद्धात्मा को॥

जिनेन्द्र देव का स्वरूप व सकल परमात्मा को नमन

2. स्वयं ध्वनित सब अंगों से वह, बिन बोले वाणी खिरती।
छत्रादिक वैभव सह वाणी, जयवन्ती सब दुःख हरती॥
ऐसे शिव कल्याण रूप सुख, के धाता जिन आतम को।
संज्ञानी जग व्याप्त सु-नायक, नमें सर्व अरहंतों को॥

आत्म स्वरूप के कथन की प्रतिज्ञा

3. शुद्धात्मा का शुद्ध स्वरूप, जिन-आगम साधन द्वारा।
निज-आत्मा में एक चित्त हो, सम्यक् निज-अनुभव द्वारा॥
सुख चाहें कैवल्य भविक जो, तथा अतीन्द्रिय जिन होना।
यथा शक्ति मैं उनको रचता-शास्त्र; भाव बस दुःख खोना॥

तीन आत्माओं में हेय उपादेयता का कथन

4. सर्व प्राणियों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा।
इन तीनों से अन्तरात्मा, -बनें, भजें फिर परमात्मा॥
बहिरात्मा को छोड़ सदाहि, समकित, व्रत जो पाते हैं।
मुनि बन करके मोक्षमार्ग पा, ध्यानी सुख को पाते हैं॥

बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा का स्वरूप

5. शरीरादि में आत्म बुद्धि रख, मूढ़ रहा बहिरात्मा है।
पर को पर निज को निज कहता, ज्ञानी सुअन्तरात्मा है॥
अन्तर आत्मा गुण, दोषों में, समीचीन श्रद्धानी हो।
परमात्मा अति निर्मल शोभे, भगवन् केवल-ज्ञानी हो॥

विविध नाम युक्त परमात्मा

6. कर्म रहित इक केवल आत्मा, रागादिक तज शुद्ध रहा।
मोहादिक से दूर, सुरों से, पूज्य प्रभु सम्पूर्ण रहा॥॥
अनन्त चतुष्टय स्वभाव से न-छूटे उत्तम पद-थित है।
गुण का ईश्वर पर् आत्मा जो, परमात्मा इन्द्रियजित है॥

बाह्य प्रवृत्ति से तन में आत्मा की पहिचान

7. बहिरात्मा इन्द्रिय द्वारों से, बहिर् विषय का ग्रहण करे।
आत्मज्ञान से विमुख रहे वह, तन में निज का मनन करे॥
अध्यातम के ज्ञान बिना जिय, खोजे सुख को बाहर में।
निज का सुख निज में ही होता, मिलता अपने अन्तर में॥

बहिरात्मा देहस्थ आत्माओं को नर तिर्यंच आदि समझता है

8. बहिरात्मा अज्ञानी प्राणी, नर शरीर को नर माने।
पशु शरीर को पशु भी माने, सुर शरीर में सुर जाने॥
नारक की वह काया में भी, नारक आत्मा है कहता।
शरीर को ही आत्मा समझे, बार-बार तन यह मरता॥

तत्व दृष्टि से आत्मा गति आदिक रहित अनन्त ज्ञानादि शक्ति सह अचल रूप है

9. निश्चय से तो कर्म रहित निज, नर, पशु सुरादि रूप नहीं।
सदा शुद्ध नय से यह आत्मा, अनन्त ज्ञान बल रूप सही।
अपने द्वारा निर्ग्रन्थों को, अनुभव में जो आता है।
सदा स्वभाव से अचल रहा नित, निज में निज ही भाता है॥

पर के जड़ शरीर में पर की आत्मा की मान्यता

10. अज्ञ रहा वह बहिरात्मा नित, अन्य आत्म सह तन को ही।
चेतन विरहित होकर के भी, निज तन सम समझे मोही॥
इन्द्रिय वचनादिक चेष्टा से, पर-तन को चेतन माने।
भाव मात्र चेतन में होता, तन जड़ होता ना जाने॥

स्व पर के शरीरों में आत्मा पुत्रादिक की कल्पना

11. जिस प्राणी को निज-चेतन का, स्वरूप न निश्चय होता।
ऐसा आत्मा शरीर में ही, स्वयं, अन्य सह युत होता॥
भार्या, सुत आदिक परिजन में, अपनापन दिखलाता है।
वह बहिरात्मा जिन-वचनों को, भव-भव में ठुकराता है॥

जन्मान्तर में भी अविद्या का संस्कार

12. ऐसा विभ्रम, प्राणीजन को, दृढ़ अज्ञानी कर देता।
अज्ञानी का संस्कार दृढ़, भव-भव में है दुःख देता॥
जहाँ-जहाँ वह जन्म धारता, शरीर को ही निज माने।
ना लखता वह तन, चेतन में,- भेद, धर्म को ना जाने॥

अज्ञानी और ज्ञानी का मन्तव्य भेद

13. जड़ शरीर में आत्म-बुद्धि रख, बहिरात्मा चेतन, तन को।
एक समझता भेद न जाने, तन पर, निज मम चेतन को॥
ज्ञानी सु-अन्तरात्मा देखो, निजचेतन को निज समझे।
नश्वर तन से मोह छोड़कर, तन को पुद्गल मय समझे॥

पर की समृद्धि में स्व की समृद्धि

14. नश्वर तन में आत्मबुद्धि रख, मेरा सुत, मेरी ललना।
करे कल्पना बड़ा खेद है, कैसे हो जिनवच पलना॥
इसी कल्पना के कारण नर, सुत तिय आदिक बुद्धि को।
नष्ट होय तब, जब समझे वह, पर में निजी समृद्धि को॥

स्व आत्मा में प्रवेश कैसे?

15. जड़ शरीर में आत्मबुद्धि का, होना भव-दुःख का कारण।
मूलभूत है अतः भूल को, मिथ्यामान करे वारण॥
बाह्य विषय जो इन्द्रिय के हैं, ना ही प्रवृत्ति उनमें हो।
अंतरंग में हि करे प्रवृत्ति, लीन सदा चेतन में हो॥

आत्मा की पहिचान न होने का कारण

16. अनादिकाल न निज स्वरूप को, जाना पर में मूढ़ रहा।
इन्द्रिय द्वारों से विषयों में, पड़ा जहाँ मद पूर रहा॥
इन्द्रिय विषयों को उपकारक, माना निज को ना जाना।
मैं ही आत्म रहा निर्णय कर, आत्म स्वरूप न पहचाना॥

योग है परमात्मा का प्रकाशक

17. बाह्य प्रवृत्ति वचन हि तजकर, अन्तर वचन प्रवृत्ति छोड़।
पूर्णतया सब जल्प त्याग से, होता निज आत्मा से जोड़॥
योग-स्वरूप में चित्त रोकने, रूप समाधि पाता है।
भव्यात्मा संक्षेप रूप से, परमातम प्रकटाता है॥

दृश्य तो अज्ञान, ज्ञानी तो अदृश्य; किससे बोलूँ?

18. इन्द्रिय द्वारा दृष्ट रहा जो, शरीरादि जड़ रूप रहा।
नहीं जानता अज्ञ रहा है, अरु मैं चेतन रूप रहा॥
जाने, देखे चेतन मेरा, इन्द्रिय से ना दिखता है।
किससे बोलूँ? जड़, चेतन की, भिन्नपूर्ण व्यवस्था है॥

प्रतिपादक, प्रतिपादन से परे है आत्मा

19. मैं उपाध्याय आदि विज्ञ से, जो कुछ प्रतिपादित होता।
अथवा शिष्यादिक समूह भी, मुझ से प्रतिपादित होता॥
मेरा यह बाहर चेष्टा से, रहा बढ़प्पन पागल सम।
क्योंकि सुदृष्टि आध्यात्मिक मय, वचन विकल्पों बिन आतम॥

ग्रहण, विसर्जन से परे है आत्मा

20. ग्रहण अयोग्य पदार्थ आत्मा, नहीं कदापि ग्रहण करे।
ग्रहीत अनन्त सुज्ञानादि को, ना छोड़े नित, सुगुण रहे॥
जाने नित ही पदार्थ सबही, स्वानुभवि ऐसा आतम।
मैं हूँ चेतन शुद्धस्वरूपी, निश्चय नय से शुद्धातम॥

मेरी अज्ञानीपन में थी भ्रान्ति

21. पुरुषपने की भ्रान्तिहि जैसे, जिसे ठूँठ में हो जाती।
इसी भ्रान्ति से उस मानव को, विकृत चेष्ठा नित भाती॥
आत्मज्ञान से पूर्व मुझे भी, पर पदार्थ में निजभ्रम था।
पर को निज उपकारक समझा, मेल नाश में सुख, गम था॥

मैं ज्ञानी हूँ, भ्रांति से दूर

22. वृक्ष ठूंठ में मानव भ्रान्ति, जिसे दूर हो जाती है।
नहीं समझता उपकारक फिर, ममता तब हट जाती है॥
तथाहि मैं भी शरीरादि में, निज के भ्रम से दूर हुआ।
नहीं समझता निज उपकारक, स्वात्म-ध्यान से पूर हुआ॥

मैं स्वानुभवि पर रूप नहीं

23. जिस चेतन के स्व स्वरूप में, निज में स्व संवेदन ज्ञान।
जिसके द्वारा निज में निज ही, अनुभव होता शुद्ध समान॥
वही आत्म मैं, नहीं नपुंसक, ना स्त्री, न पुरुष रहा।
नहीं एक, न दो, न ज्यादा, बहिर् द्वेष न हर्ष रहा॥

मैं हूँ जागृत, स्व-ग्राह्य एवं अनुभव योग्य

24. जिस शुद्धात्मा के स्वरूप के, ना मिलने से अब तक मैं।
सुगाढ़ निद्रा में सोने से, अज्ञ रहा था अब तक मैं॥
निज स्वरूप की प्राप्ति हुई अब, जग निद्रा की ना फेरी।
अक्ष, वचन से ग्रहण योग्य ना, स्वानुभवि चेतन मेरी॥

राग-द्वेष से रहित आत्मा का कोई शत्रु आदि नहीं

25. विशुद्ध ज्ञान-स्वरूपी निज को, लखने वाला ही मुझ में।
इसी जन्म में राग-द्वेष सब, दोष नष्ट हों जीवन में॥
अतः न मेरा कोई शत्रु है, अन्य नहीं प्रिय परिजन है।
नहीं साथ में जावे कोई, धर्म साथ जो निज-धन है॥

मम् स्वरूप का अदृष्टा, दृष्टा भी शत्रु आदि नहीं

26. ना मम आत्मिक स्वरूप देखा, ऐसा यह अज्ञानी लोक।
नहीं शत्रु, न मित्र है मेरा, नहीं हर्ष, न करना शोक॥
मेरा चेतन स्वरूप लख हि, यह ज्ञानी भी लोक जहाँ।
ना जाने मम शत्रु, मित्र यह, कर्म रहित है आत्म महा॥

अन्तरात्म स्थिरता में परमात्मा का ध्यान

27. ऐसी बहिरातमता तजकर, अन्तरात्मपन में थित हो।
सब विकल्प संकल्प रहित हो, परमात्मा में सुस्थिर हो॥
परमात्मा की सुभक्ति से ही, स्वात्म-शक्ति जग जाती है।
पर छूटे फिर आत्मलीनता, ध्यानीपन को लाती है॥

परमात्मा के ध्यान से शुद्धात्मा में स्थिरता

28. परमातम पद की शुभ भावन, स्व-स्वरूप दर्शाती है।
ज्ञान अनन्त स्वभावी आतम, परमातम सम भाती है।
दृढ़ संस्कार हि हो जब ऐसा, वह निश्चय तक ले जाता।
निज विशुद्ध चैतन्य मयी हो, लीन स्वयं में सुख लाता॥

सच्चे भय और निर्भयता का स्थान

29. अज्ञ शरीरादि पदार्थ में ये, मेरे हैं, इनका मैं हूँ।
कर विश्वास जगत में ऐसा, भूल, न जाने क्या मैं हूँ॥
पर देखो; पर में अपनापन, जैसा भय का थान नहीं।
परमात्मा से डरे हि लेकिन, निज बिन रक्षाथान नहीं॥

स्वयं के अन्दर है परमात्मा

30. सर्व इन्द्रियों को विषयों से, संयमित करके योगि जहाँ।
हो एकाग्र हि अन्तरात्मा, हृदय शुद्ध उपयोगि महा॥
क्षणभर भी यदि अनुभव आता, चिदानन्द का सुख जिसको।
परमात्मा का स्वरूप है वह, भासित होता है उसको॥

निश्चय से मैं ही परमात्मा, मैं ही उपासक

31. जो परमात्मा है इस जग में, वह ही मैं हूँ, मैं वह हूँ।
परमात्मा न अन्य कोई है, मैं ही परमात्मा वह हूँ॥
इस अभेद से मैं ही मेरे, द्वारा सदा उपासित हूँ।
नहीं अन्य है उपास्य मेरा, अटल व्यवस्थित भासित हूँ॥

मैं स्वरूपी पर से विरत हो स्वयं में रत हुआ

32. मैं निज में थित ज्ञान-स्वरूपी, परमानन्द सु-पूरित हूँ।
अतः दूर हो विषयों से अब, निज-स्वरूप में रत नित हूँ॥
नहीं किसी से निज-वैभव को,-पाया, न मैं तज सकता।
ध्यान करूँ मैं कर्म-नाश कर, शीघ्र शिवालय भज सकता॥

भेद विज्ञान बिना; तप करते भी मोक्ष नहीं

33. ऐसा शाश्वत आत्मा को जो, तन से भिन्न नहीं जाने।
करता घोर तपस्या तो भी, पर में सुख है वह माने॥
अज्ञानी का ऐसा तप वह, नहीं आत्म-निर्मल करता।
नहीं मोक्ष मिल पाता उसको, भव-भव फिर दुःख में रुलता॥

आत्म आनंदी को बाधाओं में खेद नहीं

34. आत्म, देह के भेद-ज्ञान से, प्रकट हुए आत्मिक सुख से।
आनन्दित है ऐसा योगी, उदय में लाये भव दुःख से॥
बड़े कष्टप्रद होने पर भी, खेद बिना फल को भोगे।
निज रस लेता लीन आत्म में, निज गुण गण का सुख भोगे॥

राग द्वेषादि तरंगों से आत्मा को ही स्व स्वरूप का दर्शन

35. जिस मानव का हृदय रूप जल, राग-द्वेष तरंगों से।
ना होता है चंचल किञ्चित, जग के विषय प्रसंगों से॥
वही आत्मा निज स्वरूप को, लखता अनुभव करता है।
रागी, द्वेषी निज-अनुभव से, सदा दूर ही रहता है॥

राग-द्वेषादि रहित अविक्षिप्त मन ही आश्रय योग्य है

36. रागादि परिणति से विरहित, ऐसा सम्यक् जो मन है।
वही आत्म का स्व-स्वरूप है, इससे उलटा दुर्मन है॥
राग, द्वेष से क्षोभित मन से, निज स्वरूप न पहचाने।
जग विषयों को छोड़े मन से, निज-वैभव को तब जाने॥

अज्ञान से अस्थिरता और ज्ञान से मन की स्थिरता

37. पर में अपनापन रूपी जब, है संस्कार अविद्या का।
जिससे मन स्वाधीन रहे न, सार्थकपन न विद्या का॥
आत्म, देह के भेद-ज्ञान से, स्वात्म-ज्ञान-संस्कार जहाँ।
तभी स्वयं ही आत्मलीनता, होती समता धार वहाँ॥

वीतरागी के अपमानादिक नहीं होते

38. जिसका चित् जब रागादिक मय, बाहर परिणत होता है।
उसके होते अपमानादिक, दुःख मय जीवन होता है॥
नहीं आत्म में जिसके जगते, राग-द्वेष मोहादि जहाँ।
ना होते हैं अपमानादिक, सुख रहता है सदा वहाँ॥

राग-द्वेष से छूटने हेतु आत्म-स्वरूप की भावना करे

39. जिस क्षण में जब कदा योगि के, मोह-भाव जग जाता है।
राग-द्वेष से मन क्षोभित हो, स्वाद विषय का भाता है॥
निज-स्वरूप का चिंतन हो गर, तत्क्षण देखो शीघ्र वहाँ।
समता जगती निज-आतम में, रहे अशांति वहाँ कहाँ॥

आत्म-स्वरूप के लगाव से शरीर का प्रेम नष्ट होता है

40. तन-स्नेह जिस मुनि के जागे, मोह छोड़ तन जड़ माने।
करे भेद विज्ञान स्व-पर में, तन से आतम पर जाने॥
देह राग से भिन्न साधु जब, निज स्वरूप में रमता है।
नहीं देह में नेह रहे फिर, निज में खिलती समता है॥

आत्मानुभव में दु:खों की शान्ति

41. शरीरादि में आत्म-बुद्धि से, जो दु:ख होता प्राणी को।
पर से भिन्न रूप लखे निज, मिले शांति उस ज्ञानी को॥
भेद-ज्ञान से निज-स्वरूप को, पाने जो ना यत्न करे।
बहु तप तपता भी प्राणी तो, न निर्वाण सु सौख्य वरे॥

तन के रागी को विषय चाह और ज्ञानी को मुक्ति

42. जिसको तन में आत्म-बुद्धि है, चाहे सुन्दर तन को ही।
तथाहि चाहे स्वर्ग लोक के, उत्तमभोग हि वह मोही॥
लेकिन तत्त्व ज्ञानी आत्मा, सुन्दर तन व सुर के भोग।
नहीं चाहता स्वप्न काल में, चाहे बस वह बनूँ अयोग॥

विषय रागी को कर्म-बंध व विषय त्यागी को मोक्ष

43. पर पदार्थ उन शरीरादि में, आत्म-बुद्धि रख बहिरात्मा।
निज-स्वरूप से डिगता निश्चित, कर्म बांधता नित आत्मा॥
स्व-स्वरूप में आत्म-बुद्धि रख, तन का मोही ना बनता।
कर्म बंध वह छूटे निश्चित, मोक्ष पाय शिव में रमता॥

ज्ञानी की दृष्टि में चिन्ह रहित है आत्मा

44. अज्ञ, दृश्य इस तन से आत्मा,-तीन लिंग मय कहता है।
स्त्री, पुरुष, नपुंसक माने, तन को निजी समझता है॥
आत्म-ज्ञान से आत्म-तत्त्व यह, तीन लिंग मय ना होता।
है अनादि संसिद्ध आत्मा, शब्द विकल्प न युत होता॥

जानकार होकर भी संस्कार वश पुनः भटकन

45. अन्तरात्मा निज स्वरूप को, निश दिन जाने फिर तो भी।
तन से निज को भिन्न मानता, यथाहि पर पदार्थ को भी॥
लेकिन पूर्व बहिर् आत्मा के, संस्कार के वश आतम।
पुनः भ्रान्ति से भटके कहता,-पर को निज भी यह आतम॥

दृश्य है अचेतन, चेतन है अदृश्य फिर राग-द्वेष

46. ज्ञानी-आत्मन् विचार करता, दिखने वाले सभी पदार्थ।
चेतन विरहित जड़ हैं ये तो, नश्वर हैं जाने परमार्थ॥
चेतन मेरी दृश्य नहीं है, अतः कहाँ मैं रोष करूँ।
करूँ कहाँ संतोष जगत् में, मैं तो समता कोष भरूँ॥

कर्माश्रित अवस्था में त्याग ग्रहण; किन्तु परमात्मा को नहीं

47. अज्ञ-आत्मा अनिष्ट वस्तु को, द्वेषी बनकर दूर करे।
वह आत्मा ही इष्ट वस्तुएँ, अपनाकर मन पूर्ण भरे॥
विज्ञ आत्म सब राग-द्वेष तज, रत्नत्रय को अपनाता।
शुद्धात्मा का अन्तर बाहर-त्याग ग्रहण ना कहलाता॥

आत्मा का मन से सम्बन्ध कर वचन काय का विकल्प छोड़े

48. सदा आत्मा मन में रमकर, चेतन मन को एक करे।
वचन काय के विकल्प तज कर, आत्म प्रवृत्ति नेक करे॥
अगर हुआ व्यवहार वचन का, काया से कुछ किया गया।
छोड़ उसे निज चित्त लगावे, भूले पूर्व जु किया गया॥

तन-मोही को भव से राग निर्मोही को विरक्ति

49. तन में आत्म दृष्टि रखते जो, उनको लगता बाह्य जगत्।
विश्वासी ये सुत, तिय आदिक, मधुर विषय रमणीय जगत्॥
लेकिन निज में दृष्टि रखें जो, ऐसे समकितयुत जन को।
बाह्य विषय में क्या श्रद्धा हो, कहाँ राग जगता उनको॥

आत्मज्ञानी पर में अनासक्त रहे

50. आत्म-ज्ञान से भिन्न कार्य को, अधिक समय ना यति देता।
स्वोपकार हि वचन, काय के, करे कार्य कुछ मुनि जेता॥
कार्य हुआ कि तुरंत भूलता, क्योंकि ना आशक्त रहा।
निज में ही आनन्द मानता, स्वयं धर्म अनुरक्त रहा॥

अन्तरात्मा का स्वरूप इन्द्रियज नहीं अतीन्द्रिय है

51. अन्तरात्मा विचार करता,-इन्द्रिय से जो दिखता रूप।
वह मेरा न स्वरूप ऐसा, मैं तो इनसे भिन्न स्वरूप॥
स्व स्वाधीन हो परमज्योति जो, सदानन्द निज-ज्ञान मयी।
प्रकाशवाली अन्तरंग में, दिखेहि निज की निजी मयी॥

रागी को विषयों में व वैरागी को स्वस्वरूप के चिंतवन में सुख

52. प्रथम काल में पूर्व की भांति, बाह्य विषय में सुख माने।
आत्म-ध्यान में खेद-खिन्न हो, सच्चा पथ दुःखमय जाने।
आत्म-ध्यान का अभ्यासी जो, बाह्य विषय में दुःख माने।
निज-स्वरूप के गुण चिंतन में, सुख का सागर पहचाने॥

आत्म-स्वरूप के खोजी को परमात्म स्वरूप की प्राप्ति

53. आत्म-भाव का कथन करे वा, पूछे ज्ञानीजन से भी।
निज-स्वरूप को चाहे मन से, ध्याये तत्परता से भी॥
ऐसा ध्यानी सावधान हो, निजी ध्यान में दे आदर।
तभी अविद्यातम वह भागे, विद्या जागे सम आदर॥

बहिरात्मा को वचन व तन में स्व की भ्रान्ति, ज्ञानी को नहीं

54. वचन व तन में भ्रमित आत्म के, वच, तन में ही निज का भ्रम।
अज्ञ मानता वच, शरीर में,-आत्मा; ऐसा होता भ्रम॥
जिसे न ऐसी भ्रान्ति कदा हो, ऐसा ज्ञानी योगि महा।
वचन व तन पर पदार्थ को कब, निज जाने कह कभी कहाँ॥

इन्द्रिय विषयों में कल्याण नहीं; फिर भी अज्ञानी की भूल

55. सर्व अक्ष विषयों में ऐसा, नहीं पदार्थ जग में कोई।
जो आत्मा का भला कर सके,-तो भी समझे सुख मोही॥
चिर कालिक अज्ञानवशी हो, उसी विषय में रमता वह।
पुण्य बिना ना मोक्षमार्ग भी, मिले न भाये समता वह॥

मूढ़; भव में अनादि सुप्त, पर में स्व-पर बुद्धि वाला होता है

56. अज्ञानी जो मिथ्यादर्शी, चिर कालों से भटक रहे।
नरक निगोदादि के दुःख सह, सुप्त बने हि अटक रहे।
जहाँ कदाचित् मानव भी हो, वनिता, सुत, जड़ पुद्गल में।
मेरे ये, मैं इनका करता, फसता वह फिर दल-दल में॥

आत्मस्थी स्व-पर शरीर को स्व-पर आत्मा से भिन्न देखे

57. अन्तरात्मा निज स्वरूप में, स्थित होकर सदा रहे।
नहीं ध्यान है तन का उसको, कदापि तन निज नहीं कहे॥
तन को नात्म बुद्धि से देखें, अन्य जीव का भी हो तन।
नहीं आत्मा वह शरीर हो, मोह छोड़ निज करे यतन॥

अश्रद्धानी को आत्म-स्वरूप का उद्यम व्यर्थ है

58. आत्म-अनुभवी विचार करता, जग अज्ञानी संसारी।
बिना बताये मम स्वरूप को, न जाने कर भव यारी॥
वैसे ही यदि उसे बताऊँ, तो भी निज को ना समझे।
व्यर्थ रहा है मेरा परिश्रम, विषय चाह भव में उलझे॥

जो कहता हूँ वह मैं नहीं, जो मैं हूँ वह अकथ्य है;

59. जो बतलाना चाहूँ मैं वह, वचन से न बतला सकता।
शब्दों में ना मैं रहता हूँ, जो निज अनुभव कर सकता॥
मैं हूँ वह भी अन्य जनों को, वचनों से न ग्राह्य रहा।
अतः अन्य को क्या बतलाऊँ, कहना क्या अनिवार्य रहा॥

मोही बाह्य और निर्मोही अन्तरंग में संतोष पाता है

60. अन्तरंग में ज्ञान-ज्योति वह, आच्छादित हो मूढ़ रही।
बाह्य विषय में मोहित होकर, पर में सुख को ढूढ़ रही॥
प्राप्त विषय में तोषित ना जो, ऐसा ज्ञानी शुद्धात्मा।
बाह्य विषय का त्यागी यति वह, निज संतोषी भव्यात्मा॥

यह जड़ तन सुख दुःख में अनभिज्ञ तो भी राग?

61. ना जाने ये जड़ तन दुःख सुख, तो भी जीव शरीरों में।
आत्म-प्रयोजन बिना हि करते, जड़ के कार्य शरीरों में॥
भोज्य छोड़ बस अनशनादिकर, निग्रह को दिखलाते हैं।
खिला, सजा उपकार करें वे, मूढ़ बुद्धि कहलाते हैं॥

तनादि को स्वात्म रूप ग्रहण में भव; और भिन्न में मुक्ति

62. जब तक मन वच काया इनको, आत्म-बुद्धि से निज समझे।
तब तक यह संसार रहा है, कर्म बँधें भव में उलझे॥
मन वच काया इनको आत्मा, निज से भिन्न जहाँ समझे।
कर्म बंध से मोक्ष पाय वह, भव दुःख से हि जहँ सुलझे॥

ज्ञानी घने वस्त्र से तन घना व घने तन से आत्म घना नहीं मानता

63. जैसे मोटा वस्त्र पहनकर, बुद्धिमान इस जड़ तन को।
मोटा नहीं भूलकर समझे, जाने भिन्न वस्त्र, तन को॥
वैसे ही निज शरीर को भी, मोटा होने पर ज्ञानी।
नहीं समझता पुष्ट आत्म है, तन विकल्प तज हो ध्यानी॥

ज्ञानी पुराने वस्त्र से तन व पुराने तन से आत्म पुराना न माने

64. जैसे जीर्ण हि वस्त्र पहनकर, बुद्धिमान इस जड़ तन को।
नहीं भूलकर जीर्ण समझता, जाने भिन्न वस्त्र तन को॥
वैसे ही निज शरीर को भी जीर्ण हि होने पर ज्ञानी।
नहीं समझता जीर्ण आत्म है, तन विकल्प तज हो ध्यानी॥

ज्ञानी नष्ट वस्त्र से तन नष्ट, नष्ट तन से आत्म नष्ट माने

65. वस्त्र नष्ट हो जाने पर भी, बुद्धिमान इस जड़तन को।
नहीं भूलकर नष्ट समझता, जाने भिन्न वस्त्र तन को॥
वैसे ही स्व शरीर के भी, नष्ट हि होने पर ज्ञानी।
नहीं समझता नष्ट आत्मा, तन विकल्प तज हो ध्यानी॥

ज्ञानी लाल वस्त्र से तन लाल लाल तन से आत्म लाल न माने

66. वस्त्र लाल हि होने पर भी, बुद्धिमान इस जड़ तन को।
नहीं भूलकर लाल समझता, जाने भिन्न वस्त्र तन को॥
वैसे ही स्व शरीर के भी, लाल हि होने पर ज्ञानी।
नहीं समझता लाल आत्मा, तन विकल्प तज हो ध्यानी॥

यह लोक जड़वत् भासने वाले को शांति अन्य को अशान्ति

67. जिस ज्ञानी को यह जग सारा, सक्रिय भी निष्क्रिय लगता।
लगे काष्ठ व लोष्ठ आदि सम, जड़ सम वा अप्रिय लगता॥
सुख दुःख क्रिया अनुभव विरहित, सारा जग भासित होता।
उसी योगि को निज सुख होता, अन्य को न भावित होता॥

कर्म कांचली से ढके ज्ञानी का, मूढ़ बन चिर तक भव भ्रमण

68. कर्म कांचली से संवृत यह, ज्ञान शरीरी ढका हुआ।
नहीं जानता बहिरात्मा वह, स्व स्वरूप न लखा हुआ॥
उस कारण वह चिर कालों तक, भव-सागर में भ्रमता है।
कैसे कर्म हटें मोही के, कब जागे वह क्षमता है॥

अज्ञ जीव को शरीर रूप परमाणुओं के मेल से उसमें आत्म की भ्रांति

69. समूह परमाणुओं के जो हि, निज-तन में आते जाते।
तन समान भी रह कर वे सब, संसारी जन को भाते।
बहुत काल तक रहने से उस, शरीर आत्म में भ्रम होता।
अज्ञानी वह शरीर को ही, आत्म समझ जग में सोता॥

शरीर के रूपादि से एकता न कर केवलज्ञान स्वरूप -चंतन करें

70. रहा गौर में मोटा, दुबला, ऐसा तन इस आतम में।
एक रूप न करे भावना, गुण विचार हो आतम में॥
ज्ञान हि केवल स्वरूप मेरा, तन का रूप नहीं मेरा।
हूँ उपयोग स्वरूपी आतम, ज्ञाता दृष्टापन मेरा॥

आत्म स्वरूप की निश्चलता में मुक्ति अन्यथा कदापि नहीं

71. जिस यतिवर के अन्तरंग में, अचल रूप निज वृत्ति है।
निज-स्वरूप की अचल धारणा, देती हि निश्चित मुक्ति है॥
जिस मानव की स्वस्वरूप में, नहीं धारणा अविचल है॥
ना मिलती है अवश्य हि मुक्ति, ध्यान रहे जब चंचल है॥

जन संसर्ग; वचन प्रवृत्ति व मन क्षोभ का कारण है अतः त्याज्य है

72. लोक जनों के बीच वचन की, वचन वृत्ति का योग बने।
मन होता है चंचल उसका, विकल्प उठते घोर घने॥
अतः योगि को सदा चाहिए, तजे लोक का जन सम्पर्क।
ज्ञान ध्यान तप लीन बने वह पल-पल में वह रहे सतर्क॥

अनात्मदर्शी को ग्राम वन में भेद, आत्मदर्शी का निज में ही वास

73. हुआ आत्म स्वरूप का है न, दर्शन जिसको वह योगी।
कभी चाहता ग्राम नगर वा, कभी चाहता वन योगी॥
लेकिन जिन यतिवर को निज का, हुआ स्वरूप दर्शन मानों।
स्वानुभवी के रागादिक बिन, स्वस्थ आत्म निज थल जानो॥

तन में आत्मपन भव भ्रमण व आत्म में आत्मपन मोक्ष का कारण

74. बाह्य देह में आत्म-भावना, है संसार भ्रमण कारण।
निज-चेतन में आत्मभावना, तन विमुक्ति का है साधन॥
खान पान से पुष्ट बनाकर, स्वच्छ बनाकर जो तन को।
निज का समझे कर्म बंध कर, भव भटकाये चेतन को॥

स्वयं के द्वारा भव भ्रमण व मोक्ष होने से स्वयं ही गुरु है आत्मा

75. जब निजआत्मा जड़ शरीर में, करा मोह भव भ्रमवाता।
आत्मा में ही आत्म बुद्धिकर, स्वयं मोक्ष तक पहुँचाता॥
चूंकि आत्म हि निज आत्मा से, सबक ज्ञान का लेता है।
अतः निजात्मा निज का गुरु है, निश्चय अन्य न होता है॥

तन का मोही मरण और वियोग से भयभीत होता है

76. शरीरादि में आत्मबुद्धि ही, दृढ़ता जिसकी पाती है।
शरीर छूटने पर वह आत्मा, मरने से घबराती है॥
इसी तरह वह मित्रादिक के, वियोग को न सह पाता।
मरण जान कर रोता निशदिन, सल्लेखन से कतराता॥

ज्ञानी मरण व जीवन को वस्त्र विमोचन व ग्रहणवत् मानता है

77. निज-स्वरूप में आत्म-बुद्धि हो, ऐसा हि है अन्तरात्मा।
बाल युवा या तन विनाश में, जड़ नाटक माने आत्मा॥
तन के जन्म मरण हैं देखो, चेतन सदा अमर रहता।
मानो वस्त्र हि त्याग ग्रहण सम, निज में रहती निर्भयता॥

विषयों में सुप्त की आत्म में जागृति, आत्म में सुप्त की विषयों में जागृति

78. ग्रहण, त्याग या बाह्य कार्य में, जो ना उत्सुक, सोता है।
वही आत्मा आत्म-विषय का, ध्यान रखें, नित जगता है॥
ग्रहण, त्याग या बाह्य कार्य में, जो उत्साहित, जगता है।
वही आत्मा आत्म विषय में, मूढ़ बना नित सोता है॥

अन्तरंग व बाह्य के भेद विज्ञानी दृढ़ात्मा को मोक्ष की प्राप्ति

79. अन्तरंग में निज दर्शन कर, बाह्य देखता तन आदिक।
तन, चेतन के भेद-ज्ञान से, ना रुचते वे तन आदिक॥
भेद-ज्ञान का अभ्यासी हो, दृढ़ता निज में आती है।
निज का ध्यानी कर्म काटता, शिव में आत्म समाती है॥

आत्मदर्शी को प्रथम जग उन्मत्तवत् व अंत में जड़वत् प्रतीत होता है

80. निज-दर्शन हो गया जिसे है, प्रथम, योगि को इस भव में।
सर्व जगत् लगता पागल सम, दिखे न सच्चा कुछ जग में॥
निष्पन्नावस्था को पाकर, निज अभ्यासी योगी को।
काष्ठ, लोष्ठ सम जग लगता है, पक्वधिया उस योगी को॥

जिनवचन सुनते, सुनाते हुए भी भेद विज्ञान की भावना बिन मोक्ष नहीं

81. आत्म-स्वरूप को गुरु आदिक से, बहुत बार सुनने पर भी।
अपने मुख से शिष्यादिक को, बहुत बार कहने पर भी॥
जब तक इस आतमस्वरूप की, शरीरादि पर द्रव्यों से।
भिन्न भाव न करता आतम, मोक्ष मिले न कर्मों से॥

भेद विज्ञानी को स्वप्न में भी शरीर से सम्बन्ध की भावना न हो

82. अन्तरात्म को सदा हि तन से, भिन्न आत्म अनुभव करके।
आत्मा में ही रहे भावना, उस प्रकार अनुभव करके॥
जिस प्रकार कि स्वप्नकाल में, भी शरीर यदि आता याद।
तो भी उसमें निज-आत्मा को, न जोड़े, लेता वह स्वाद॥

पाप पुण्य के हेतु अव्रत, व्रत से ऊपर उठकर शुक्लध्यान से मोक्ष

83. अव्रतरूपी पंचपाप से, पाप-कर्म का बन्धन हो।
अहिंसा आदिक पंच व्रतों से, पुण्य कर्म का बन्धन हो॥
पाप, पुण्य इन दोनों कर्मों, का क्षय होना मोक्ष कहा।
मोक्षार्थी वह दोनों कर्मों, को छोड़े हो मोक्ष अहा॥

अव्रत तज, व्रत में निष्ठ हो परम वीतरागी व्रत का राग छोड़े

84. अव्रत छोड़े हिंसादिक वे, अहिंसादि सुव्रत धारे।
दृढ़ता-सह पालन कर उनका, परमातम फिर पद धारे॥
राग-द्वेष कामादिक ये सब, दोष नहीं परमातम में।
सिद्ध बने सब व्रत भी छूटें, सदा रमें निज आतम में॥

अन्तर्जल्पज कल्पनाएँ दुःख का मूल उसके नाश पर परम पद की प्राप्ति

85. अंतरंग का वचन जल्प जो, निज आत्मा में चलता है।
जाल कल्पनाओं का वह ही, दुःख देता निज छलता है॥
दुःख का मूल जाल जब नशता, मिलता सुप्रिय हितकारी।
परमात्मा का पद है ऐसा, महिमामय मंगलकारी॥

अव्रती; व्रती बन ज्ञान भावना में लीन हो केवली बन सिद्ध पद पावे

86. अव्रत वाला व्रत को धारे, व्रती बने जग में शोभे।
व्रतधारी वह ज्ञान-भावना, में सुलीन वह नित होवे॥
विकल्प दूर हो, कर्म चूर हों, बने हि अर्हत् परमात्मा।
केवलज्ञानी बने स्वयं फिर, लोक पूज्य वह सिद्धात्मा॥

मात्र वेष तनाश्रित जो भव का हेतु है समाधि बिन वेषाग्रह से मोक्ष नहीं

87. वेष मात्र का धारण करना, तन आश्रित देखा जाता।
शरीर से ही इस आत्मा का, है संसार कहा जाता॥
अतः हि जिनको वेष मात्र का, आग्रह होता निज-मन में।
मात्र वेष से बिना भाव के, मोक्ष मिले न जीवन में॥

जाति तनाश्रित जो भव का हेतु है मोक्ष हेतु जात्यागृह मुक्ति का हेतु नहीं

88. जाति देह के आश्रित होती, देह आत्मा का भव है।
अतः न जो यह आग्रह छोड़े, आत्म भटकती भव-भव है॥
मात्र देह के चिह्न रहे या, इन्द्रिय आदिक पुद्गल हैं।
पुद्गल रहते, नहीं मोक्ष हो, छूटे बनता उज्ज्वल है॥

जाति, वेश मुक्ति हेतु आगम का आग्रह जो करें, उन्हें भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं

89. जिन जीवों को जाति, वेष का, विकल्प चलता है मानो।
मत-समयाग्रह दृढ़तम रहता, हठी आत्म हैं वे जानों॥
मात्र शरीर के आश्रित ऐसे, पुरुषों का जीवन बेकार।
नहीं भाव बिन मोक्ष मिले फिर, कैसे हो जीवन साकार॥

निर्मोही का जिन विषयों का त्याग; उन्हीं में मोही का राग व निर्ग्रन्थता में द्वेष

90. जिस शरीर से मोह छोड़ने, वीतराग पद को धारें।
इन्द्रिय विषयों को त्यागें वा, साधु वेष को स्वीकारें॥
उसी शरीर से व विषयों में, मोही करते प्रीति कदा।
कहीं द्वेष करते जिन-पथ में, भव में भ्रमते रहें सदा॥

अभेदज्ञानी संयोग में आत्मा की दृष्टि को तन में आरोपित करता है

91. भेद-ज्ञान से शून्य पुरुष वह, संयोगी पुरुषों को देख।
लंगड़े अन्धे को चलता लख, भ्रम में पड़ता युगपत् देख॥
लंगड़े की आँखें अन्धे में, आरोपित करता जैसे।
अज्ञ भी चेतन की दृष्टि को, समझे तन में ही वैसे॥

संयोगों का भेद ज्ञायक आत्मा की दृष्टि को तन में से नहीं जोड़ता

92. भेद-ज्ञान से सहित आत्मा, मिले हि दो पुरुषों को देख।
लंगड़े अन्धे को चलता लख, पड़े न भ्रम में युगपत् देख॥
लंगड़े की आखें अन्धे में, करे न आरोपित जैसे।
विज्ञ भी चेतन की दृष्टि को, ना समझे तन में वैसे॥

अज्ञानी को मात्र बाह्य; किन्तु ज्ञानी को संसारी की सर्व दशाएँ भ्रम रूप

93. बहिरात्मा को सुप्तावस्था, वा उन्मत्त अवस्था ही।
लगती संसारी जीवों की, भ्रम मय मात्र अवस्था ही॥
किन्तु आत्मा के दर्शी को, मोही दोषी की चेष्टा।
भ्रम मय इन्द्रजाल सम लगती, जग भ्रमवाती है चेष्टा॥

रागी शास्त्रज्ञ जागृत भी कर्म संजोता; किन्तु निर्ग्रन्थ सुप्त प्रमत्त भी कर्मों से छूटता है

94. रखे देह में आत्म-बुद्धि वा, सब शास्त्रों का हो ज्ञाता।
जागृत रहता तो भी आत्मा, कर्म-मुक्त ना हो पाता॥
किन्तु भेद-ज्ञान का धारी, सोता या उन्मत्त रहे।
तो भी कर्मों से छूटे वह, करे निर्जरा मस्त रहे॥

जहाँ जुड़ाव वहीं श्रद्धा और वहीं मन लीन होता है

95. जहाँ पुरुष का मन लगता है, उसी विषय में श्रद्धा हो।
जहाँ विषय में श्रद्धा होती, वहीं लीन मन उसका हो॥
भव-विषयों की श्रद्धा भव में, मानव को भटकाती है।
अध्यातम की श्रद्धा भव से, मुक्त करा सुख लाती है॥

जहाँ से जुड़ाव छूटे वहाँ से श्रद्धा हटे फिर चित्त की लीनता कैसे हो सके?

96. जहाँ पुरुष का मन ना लगता, उससे रुचि हट जाती है।
जिससे हटती रुचि फिर कैसे, वहाँ लीनता भाती है॥
नहीं लीनता होती भवि को, जग-विषयों से दूर रहे।
आत्म-लीनता भाती उसको, स्वान्त-सुखों से पूर रहे॥96॥

परमात्मा की भक्ति से बने परमात्मा जैसे संग दीपक सम बनती बाती

97. यह आत्मा जो पर-आत्मा उन अर्हतादि का ध्यान करे।
परमात्मा को ध्याते-ध्याते, परमात्मा का रूप धरे॥
जैसे वाती भिन्न रहे पर, दीपक-सम बन जाती है।
जैसा साथ मिले आत्मा यह, तादृश बनकर भाती है॥

आत्मा आत्म-ध्यान से बने परमात्मा जैसे तरु घर्षण से प्रकटती है अग्नि

98. अथवा देखो निज-आत्मा यह, निज का करते-करते ध्यान।
परमात्मा हो जाता जैसे, बाँस रगड़ से जले स्व जान॥
नहीं बाँस को कोई जलाता, फिर भी बाँस स्वयं जलता।
निज आत्मा निज के ही बल से, निज-ध्यानी शिव में ढलता॥

सदा भेदाभेद रूप आत्मा की भावना से अनिवर्चनीय अक्षय पद की प्राप्ति

99. भेद-अभेद हि उक्त भावना, भविक आत्म में नित्य करे।
तथाहि इक दिन वचन अगोचर, शिव-पद स्वयं हि प्राप्त करे॥
जिस शिव-पद के मिलने पर वह, नहीं छूटता फिर मानो।
मुक्त हुआ जो फिर न जन्मे, नहीं लौटता है जानो॥

चेतन भूतज नहीं अतः योग से मोक्ष हेतु योगी को तप में कोई कष्ट नहीं

100. चेतन लक्षण वाला जीव हि, यदि भूतज है जो माने।
भू, जल, वनस्पति व वायु, बना अग्नि से जो जाने॥
बना हि वा शुद्धात्म रूप से, तो शिव में पुरुषार्थ कहाँ।
ऐसा न तो, योग धार शिव-मिले, योगि को कष्ट कहाँ॥

तन नाश व आत्मा के शाश्वत पने का स्वप्न व जागृत अवस्था में अभेद है

101\. स्वप्नावस्था में प्रत्यक्ष हि, शरीरादिक हो नष्ट यदि।
तो भी जैसे आत्मा भी वह, ना नशती यह गाएँ यति॥
उसी तरह जागृत हो तो भी, यदि विनाश होता यह तन।
द्वय में ना अन्तर विशेषता, अजर-अमर रहता चेतन॥

सुखों में भावित भेद विज्ञान दुःख में नष्ट हो जाता है अतः दुःखों में भेद विज्ञान करें

102\. बिना कष्ट को सहे आत्म का, भेद रूप विज्ञान यहाँ।
परिषह व उपसर्ग आयें तो, हो जाता है नष्ट वहाँ॥
अतः यदि अन्तरात्म योगि को, पूर्ण शक्ति दुःखों के साथ।
भेद-ज्ञान की रहे भावना, तब मिलता फिर वह परमार्थ॥

राग द्वेष की प्रवृत्तिमय प्रयत्न से वायु का संचार और उस से तन की प्रवृत्ति

103\. आत्मिक इच्छा, द्वेष प्रवृत्ति, से प्रयत्न हैं जो चलते।
इसी यत्न से वायु उपजती, वायु से ही तन चलते॥
शरीर रूपी यंत्र, वायु मय-शक्ति से निज कार्य करे।
योग क्रिया से कर्म-बंध हो, इसे छोड़ शिव आर्य वरे॥

अज्ञ इन्द्रिय सह तन को आत्मा में जोड़ दुःख को किन्तु ज्ञानी मोक्ष को पाता है

104\. बहिरात्मा अज्ञानी आत्मा, इन्द्रिय सह तन आदिक यह।
करे आत्म में आरोपित फिर, समझे गौर आदि मम् वह॥
यही कल्पना कर, दुःख भोगे, किन्तु विज्ञ ना यह माने।
भेद-ज्ञान से उत्तम पद शिव, प्राप्त करे ज्ञानी जानें॥

परमात्मा में स्थिर चित्तवाले को अचल ज्ञान सुख की प्राप्ति

105. मोक्ष परम उस पद की प्राप्ति, समाधितन्त्र यह बतलाये।
भली भांति इसको पढ़ता जो, तथा आत्म में बस जाये॥
वही भविक भव की जननी पर,-पदार्थ में निज दुर्मति को।
छोड़, जगत् से मुक्त शीघ्र हो, पाता निज सुख सन्मति को॥

निर्ग्रन्थ को ही निर्विकल्प समाधि व शुद्धोपयोग की प्राप्ति

106. ध्यान, समता और समाधि, सुगुप्ति कहिये सामायिक।
मुनि शुद्धोपयोग भी पाते, निज में रहते स्वानुभविक॥
रहे पूर्ण निर्ग्रन्थ साधु वे, भव-भोगों के हैं त्यागी।
पा निज में अविकल्प समाधि, आत्म-ध्यान के अनुरागी॥

वीतरागता को भजने से ही पर पदार्थों से विरक्ति संभव है

107. भविक चाहता समाधि को जो, प्रथम हि वीतराग भजता।
सम्यग्दृष्टि सरागता तज, निर्ग्रन्थों की रज गहता॥
वीतराग जिन, सुगुरु, शास्त्र की, नमन भक्ति जीवन में हो।
बाह्य पदार्थ व तन, पर माने, श्रद्धा निज-चेतन में हो॥

अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि को ही व्रत पालन से जग से मुक्ति

108. ऐसा भविक हि अन्तरात्मा, बनता सम्यग्दर्शी है।
अणुव्रत, मुनिव्रत पाले उत्तम, चलता मोक्ष सुमार्गी है॥
बनता निज का ध्यानी इक दिन, 'आर्जवता' से परमात्मा।
यतिवर, कर्म बंध काटकर, पाये मोक्ष हि शुद्धात्मा॥

प्रशस्ति

109. नेमावर शुभ क्षेत्र में, समाधि-तन्त्र अनुवाद।
कार्तिक शुक्ला दशम को, शुरु किया प्रभु याद॥

★★★

110. आदिनाथ का दर्शकर, पार्श्व-प्रभो थे पास।
सिद्धोदय शुभ-क्षेत्र पर, पद्य बने उल्लास॥

★★★

111. आष्टाह्निक शुभ पर्व में, सिद्धोदय का योग।
आये हरदा नगर फिर, काव्य बना संयोग॥

★★★

112. इसी बीच गुरुदेव का, पा 'अबगांव' सुदर्श।
विद्यासागर सूरि के, हुआ निकट में हर्ष॥

★★★

113. गुरु-भाई हम सब गले-मिले नमन के साथ।
बैठे गुरु गाथा हुई, किया विहार भी साथ॥

★★★

114. गुरु-छाया में सब रहें, बढ़ता अनुभव ज्ञान।
गुरुवर ने भरपूर दे-स्नेह, हुआ बहुमान॥

★★★

115. मिला नेह आचार्य का, पूर्ण हुआ अनुवाद।
वीर मोक्ष पच्चीस सौ-इक्तालिस कर याद॥

★★★

116. दिन अठाईस में हुआ, यह अनुवाद सुपूर्ण।
मार्गशीर्ष शुभ अष्टमी, हरदा में सम्पूर्ण॥

★★★

117. शान्तिनाथ का द्वार है, अतिशयकारी जान।
बड़ी शान्ति मिलती जहाँ, याद आये निर्वाण॥

★★★

118. पूज्यपाद आचार्य के, अनन्त हैं उपकार।
कभी न भूलेंगे सभी, भरा ज्ञान-भण्डार॥

★★★

119. निर्ग्रन्थों का नित मिले, हमें परं आशीष।
पढ़ें पद्य अनुवाद हम, '**आर्जव**' बनें ऋषीश॥

★★★

आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित

वारसाणुवेक्खा

का पद्यानुवाद

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

मंगलाचरण

1. सर्व सिद्ध व चौबीसों जिन, तीर्थंकर को नमता मैं।
चिरकालिक भव बंध नशाया, शुक्ल ध्यान की समता में॥
भव्यों को वैराग्य जनक उन, द्वादश अनुप्रेक्षाओं को।
यहाँ कहूँ, चिन्तन कर जिनका, तजें भोग आशाओं को॥

अनुप्रेक्षाओं के नाम

2. अनित्याशरण तथा एकत्व, अन्यत्व व संसार कहो।
लोक तथा अशुचित्व भावना, आस्रव संवर सार गहो॥
कही निर्जरा, धर्म भावना, और बोधि का चिन्तन हो।
तभी बने भवि दृढ़ वैरागी, तत्त्व विषय का मन्थन हो॥

[अनित्य अनुप्रेक्षा]

सभी वस्तुयें अनित्य

3. सुर, नर, नृप के श्रेष्ठ महल सब, वाहन, शय्या, आसन, यान।
मात, पिता वा पितृ पक्ष सब, अनित्य व नश्वर पहिचान॥
सदा साथ न रहने वाले, स्वार्थ जगत के हैं साथी।
इन्द्रिय सुख के रहने तक ही, चले स्वजन की परिपाटी॥

रूप यौवन आदि इन्द्र धनुष के समान

4. सुखद इन्द्रियाँ, निरोगी तन व, यौवन, शक्ति, तेज महान।
सुत, सौभाग्य व तन सुन्दरता, विषय पदार्थ क्षण भङ्गुर जान॥
शाश्वत न हैं इन्द्रधनुष सम, क्षण भर में नश जाते हैं।
अतः छोड़ते ज्ञानी इनको, निज में निज सुख पाते हैं॥

अहमिन्द्र और बलदेव पद स्थिर नहीं

5. अहमिन्द्रों के पद वे अथवा, बलदेवादिक पर्यायें।
नीर बबूले, इन्द्रधनुष सम, क्षण भर में ही नश जायें॥
बिजली चमके, मेघों की ज्यों,-शोभा शीघ्र विनशती है।
वैसे ही पद, सुख-सामग्री, अल्पकाल में नशती है॥

जीव और देह का सम्बन्ध नीर क्षीर वत्

6. नीर क्षीर सम एकमेक जो, जीव देह का साथ रहा।
वह भी इक दिन निश्चित छूटे, पुण्य, पाप का हाँथ रहा॥
भोग और उपभोग वस्तुयें, सदा दूर जो दिखती हैं।
वे कैसे हो सकतीं शाश्वत? प्रतिक्षण सदा विनशती हैं॥

आत्मा शाश्वत है ऐसा चिंतन करें

7. निश्चय से तो आत्म द्रव्य वह, देव असुर व नर प्राणी।
राजाओं के वैभव से भी, भिन्न रहा कहते ज्ञानी ॥
शाश्वत वह निज आत्म द्रव्य है, ऐसा चिन्तन जो करते।
पापों को तज मुनि बन करके, निश्चय भज, भव से तिरते॥

[अशरण अनुप्रेक्षा]

मणिमंत्रादि मृत्यु से नहीं बचा सकते

8. मरण समय तीनों लोकों में, सुमणि, मंत्र औषध सारीं।
रक्षक, शस्त्र व घोड़े, हाथी, रथ व विद्याएँ प्यारीं ॥
जीवों के नहीं शरण रहें वे, निश्चय से ज्ञानी कहते ।
नहीं बचा सकते मरने से, निज-निज कर्म सभी सहते॥

मृत्यु के समय इन्द्र को भी शरण नहीं

9. स्वर्ग किला है तथा देवगण, सेवक, जिसके ऐसा इन्द्र।
वज्र शस्त्र है ऐरावत गज, जिस पर बैठे सुधर्म इन्द्र॥
स्वर्गिक सुख को भोगे जिसका, दीर्घ काल तक मरण न हो।
ऐसे सुर की आयु पूर्ण हो, तब कोई फिर शरण न हो॥

काल का कवल चक्रवर्ती भी

10. आयु काल जब बीत जाय तब, नवनिधि चौदह रत्न महान।
घोड़े मंत्र वे हाथी सेना-चतुरंगिनि छूटें जान॥
चक्री पद का वैभव सारा, यहीं पड़ा रह जाता है।
अशरण यह संसार रहा है, धर्म साथ में जाता है।

आत्मा ही वास्तव में शरण है

11. जन्म जरा, भय, मृत्यु रोग से, आत्मा निज रक्षा करता।
जहाँ बंध व उदय सत्व इन, कर्मों को विरहित करता॥
अतः आत्म ही शरण हमारी, पर पदार्थ न साथ रहे।
अपनी रक्षा अपने से ही, होती यह परमार्थ कहे॥

परमेष्ठी रूप आत्म ही शरण है

12. अरहंत सिद्धाचार्य कहो व, उपाध्याय सत् साधु ये।
पंच परम परमेष्ठी हैं व, आत्म सुखों के स्वादु ये॥
आत्म तत्व में स्थित हैं ये, निज आतम की पर्यायें।
शरण गहूँ में आत्म तत्व की, निश्चय में निज गुण गायें॥

रत्नत्रय रूप आत्मा ही शरण है

13. सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, चारों आतम में थित हैं।
अतः आत्म है शरण हमारी, करें नमन हम नियमित हैं॥
क्रिया बाह्य चलने तक बाहर, परम आत्म उपासित हो।
अन्तर में लवलीन साधु जब, पूज्य अन्तरित भासित हो॥

[एकत्व अनुप्रेक्षा]

जन्म-मरण और कर्मबंध अकेला ही करता

14. जीव अकेला कर्म-बंध कर, चिर एकाकी भव भ्रमता।
जन्म अकेला मरण अकेला, स्वयं कर्म फल को भरता॥
नहीं अन्य उसके कर्मों को, टाल कभी भी सकता है।
नहीं बाँटने से दुःख बटँता, अटल कर्म व्यवस्था है॥

अकेला ही पाप करता और फल भोगता

15. विषय सुखों के भोग हेतु यह, तीव्र लोभ करता है जीव।
सदा अकेला पाप कमाता, नरक पशुगति भ्रमता जीव॥
दुर्गतियों में जीव अकेला, महा-कष्ट को सहता है।
आकुलतामय विषय सुखों में, नहीं आत्म सुख गहता है॥

अकेला ही पुण्य करता और फल भोगता

16. धर्म हेतु सत्पात्र दान से, करे पुण्य स्वयं यह जीव।
नर सुरेन्द्र फल पाय अकेला, पुण्य सुफल को भोगे जीव॥
सम्यग्दर्शन सहित दान से, स्वर्ग सुखों को पाता है।
दर्श पूर्व वह पात्र दान दे, भोग भूमि में जाता है॥

उत्तम और मध्यम पात्र

17. पात्र परीक्षा गुण से होती, नहीं होय धन वैभव से।
गुण ग्रहण ही मोक्षमार्ग में, भविक चाहते हैं मन से॥
समदर्शी मुनि श्रेष्ठ पात्र हैं, जिनकी सेवा करें सदा।
प्रतिमाधारी मध्यम जानो, पात्र, चलें शिवराह सदा॥

जघन्य पात्र और अपात्र

18. जिन–शास्त्रों में सद्दर्शी गृहि, जघन्य पात्र कहे जाते।
सद्दर्शन बिन रहा अपात्री, वह जानो धर्मी गाते॥
पापादिक अनुमोदन कर भवि, कभी अपात्र न सेवें वे।
अपात्र दान वह दुर्गति देता, शिक्षा ऐसी लेवें वे॥

निर्वाण किसे नहीं

19. समदर्शन से भ्रष्ट हुए जो, वे ही निश्चित भ्रष्ट रहे।
नहीं मोक्षपद मिलता उनको, जो दर्शन से भ्रष्ट रहे॥
व्रत चारित से भ्रष्ट हुए जो, अगर पुनः व्रत अपनाते।
सिद्ध सुपद को पाते इकदिन, मिथ्यात्वी न शिव पाते॥

शुद्धात्मा स्वरूप ही उपादेय

20. मैं एकाकी, ममता विरहित, आतम शुद्ध स्वरूपी हूँ।
ज्ञान, दर्श गुणधारी आतम, चेतनमयी अरूपी हूँ॥
शुद्धैकत्व उपादेय है, करें ध्यान संयमी ऐसा।
कर्म नाशकर मुक्त बनें जब, सुख पाते सिद्धों जैसा॥

[अन्यत्व अनुप्रेक्षा]

संसार के सम्बन्ध सब स्वार्थमूलक

21. मात-पिता व भ्रात पुत्र सब, परिजन जितने दिखें सदा।
सभी जीव से भिन्न रहे हैं, सदा साथ न रहें कदा॥
अपने-अपने स्वार्थ वशी वे, अपनापन दिखलाते हैं।
पाप उदय में जब सुख न हो, अपनापन ठुकराते हैं॥

मोहवश जीव अन्य के लिये शोक करता

22. यह मर गया; यह तो मेरा, प्रिय निकट का स्वामी था।
शोक करे दिन रात गँवाता, शीघ्र मिले जो स्वामी था॥
किन्तु डूबते हुए स्वयं की, भव-समुद्र में आतम को।
नहीं बचाता, शोक करे न, शुद्ध करे न आतम को॥

शरीर से भिन्न आत्मा ज्ञानदर्शन रूप

23. शरीरादि जो पदार्थ दिखते, भिन्न रहे निज आतम से।
क्योंकि बाह्य द्रव्य हैं ये सब, सदा साथ न आतम से॥
ज्ञान-दर्श स्वरूपी आतम, ऐसा चिन्तन करें सदा।
निज चेतन के भेद ज्ञान से, आत्म ध्यान में रमें सदा॥

[संसार अनुप्रेक्षा]

श्रद्धा बिन जीव संसार परिभ्रमण करता

24. जन्म जरा, भय, मृत्यु, रोग से, भरे जगत में जीव यहाँ।
जिनपथ पर सत् श्रद्धा के बिन, काल अनादि जीव जहाँ॥
द्रव्य, क्षेत्र व काल, भाव,भव, भ्रमण लोक में करता है।
चारों गति की चौरासी उन-योनि सभी भटकता है॥

द्रव्य परावर्तन का स्वरूप

25. पुद्‌गल परिभ्रमण में देखो, एक जीव ने भव-भव में।
सर्व पुद्‌गलों को भोगा है, अरु छोड़ा है भव-भव में॥
अनन्त जन्मों से अनुभव कर, जिन द्रव्यों को छोड़ा था।
उनको ही फिर अपने तन से, बार-बार है जोड़ा था।

क्षेत्र परावर्तन का स्वरूप

26. पूर्ण लोक के व्योम क्षेत्र में, नहीं कोई स्थान जहाँ।
नाना अवगाहन से जिसमें, ना जन्मा हो जीव वहाँ॥
लघु व दीर्घकाय धारणकर, पूर्ण लोक में क्रमशः जीव।
यहाँ अनन्तों जन्म मरण कर, भ्रमा जगत् में गम सह जीव॥

काल परावर्तन का स्वरूप

27. अशुद्ध जीव ने अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के सब काल।
जन्म मरण कर व्यर्थ किये व, सुसमया-वलियों के काल॥
काल परावर्तन के द्वारा, अनन्त काल बिताया है।
आतम सुख का लेश न पाया, दुख में समय गमाया है॥

भव परावर्तन का स्वरूप

28. नरकों की जघन्य आयु वह, दस हजार वर्षों कहते।
सबसे उपरिम ग्रैवेयक तक, एकतीस सागर गहके॥
बहुतर जन्म मरण धारण कर, चारों गति में भ्रमण किया।
भव भ्रमण सब किये अनेकों, रत्नत्रय न ग्रहण किया॥

भाव परावर्तन का स्वरूप

29. मिथ्यातम के वशीभूत हो, भाव परावर्तन के चार।
प्रकृति, स्थिति, अनुभाग अथवा, प्रदेश बंध भी करें विचार॥
इन चारों थानों में जिय ने, बहुत बार है भ्रमण किया।
आठों कर्मों को बाँधा वा, नहीं कर्म का क्षपण किया॥

दयादान रहित जीव संसार में भटकता है

30. जो संसारी सुत, कलत्र के, हेतु पाप बुद्धि रखता।
पाप–मार्ग से धन अर्जन कर, दया दान को भी तजता॥
अशुभ कर्म के बड़े भार से, दुर्गतियों में भ्रमण करे।
नाश काल में ज्ञान विषम हो, नहीं धर्म आचरण करे॥

धर्म बुद्धि छोड़ने वाला दीर्घ संसारी

31. मेरा सुत यह भार्या मेरी, धन अरु धान्य रहा मेरा।
ऐसी तीव्र चाहना से जो, तजे धर्म अघ का घेरा॥
जब छूटे यह लोक सम्पदा, मोहवशी होकर प्राणी।
करे अत्यधिक शोक जहाँ फिर, दुर्गति में पड़ता प्राणी॥

मिथ्या मान्यता से संसार भ्रमण

32. मिथ्यातम का उदय होय जब, मिथ्यादर्शी अज्ञानी।
जिनभाषित, जिनधर्म मार्ग की, निंदा करता है प्राणी॥
रागी, हिंसक कुधर्म को वा, मिथ्याभेषी कुलिङ्ग को।
माने, नमता भव में भ्रमता, ना माने वह सुलिङ्ग को ॥

मकार त्रय का सेवन संसार भ्रमण का कारण

33. जीव राशि का हनन करे वा, मांस, मधु व मदिरा पान।
गहता है पर धन, दारा को, पाप फलों को नहीं पिछान॥
राग-द्वेष मय कलह मार्ग से, पाप घड़े को भरता है।
नारक, पशु आदिक गतियों में, जन्में फिर, फिर मरता है॥

इन्द्रिय विषयों के कारण संसार में पतन

34. मोह रूप उस अंधकार से, अन्धा बनकर संसारी।
पञ्चेंद्रिय के विषय भोग से, दिवस रात करता यारी॥
पाप-मार्ग से पुरुषार्थी बन, पाप खजाना भरता जीव।
दुर्गतियों में महाकष्ट को, दीर्घ काल तक सहता जीव॥

चौरासी लाख योनियों के भेद

35. नित्य, इतर निगोद व पृथ्वी, जल, अग्नि अरु वायुकाय।
सात-सात हैं लाख योनि व, दस हैं लाख वनस्पतिकाय॥
द्वि, त्रि, और चार इन्द्रिय की, दो-दो लाख योनि कहिए।
सुर नारक व पशु की चउ, चउ-लख, नर चौदह लख कहिए॥

संसार में सुख-दुःख होते ही हैं

36. संग सहित संसारी जन को, मिलन, वियोग सभी होते।
लाभ नाश भी हो पदार्थ का, जिससे सुख-दुख भी होते॥
हो मानाप-मान भी निश्चित, भोगों में नित आकुलता।
होती कर्मोदय से जग में, शिव में रहे निराकुलता॥

निश्चय नय से जीव का संसार भ्रमण नहीं

37. अष्ट कर्म के कारण, प्राणी, भय से पूरित भव-वन में।
सदा भ्रमण करता है अगणित, दुख भी सहता जीवन में॥
निश्चय नय से कभी जीव के, यह संसार नहीं होता।
वह तो शुद्ध, अखण्ड, निराला, कर्मों सहित नहीं होता॥

हेयोपादेय जीव का कथन

38. भव से पार गया जो प्राणी, उसको उपादेय माना।
सच्चे सुख का अनुभव करता, ऐसा जिनवर ने जाना॥
जो भव के दुःखों से पूरित, उसको हेय सदा जानो।
भव में सुख न, शिव में सुख है, ऐसा चिन्तन शुभ मानो॥

[लोकानुप्रेक्षा]

लोक और उसके भेद

39. जीवादिक ये पदार्थ जिसमें, होते उसको लोक कहा।
अधो मध्य व ऊर्ध्व भेद से, तीन तरह का लोक कहा॥
चौदह राजू ऊँचा कहिए, सात रज्जु मोटा है जो।
पैर पसारे हाँथ कटी पर, पुरुषाकार रहा है जो॥

तीनों लोकों की संरचना

40. नरक सभी है अधोलोक में, जहाँ नारकी रहते हैं।
असंख्य द्वीपरु समुद्र जिसमें, मध्य लोक वह कहते हैं॥
स्वर्गों के त्रेसठ पटलों सह, ऊर्ध्व लोक वह पहचानो।
इससे ऊपर मुक्त आत्म का, सिद्ध लोक है सब जानो॥

स्वर्गों के त्रेसठ पटल

41. इकतीस, सात, चार कहो दो, एक,एक ऋतु आदि पटल।
अन्तिम चारों स्वर्गों में वे, होते छह ही जहाँ पटल ॥
ग्रैवेयक में नव हैं जानो, नव अनुदिश का एक पटल।
पाँच अनुत्तर विमान का इक, त्रेसठ इन्द्रक कहे पटल॥

उपयोगों का फल

42. रहे अशुभ उपयोग जहाँ फिर, नारक, तिर्यक् गति देता।
रहता शुभ उपयोग जहाँ पर, सुर, नर गति के सुख देता॥
शुद्ध-उपयोगी मुनि, केवली-बनता शिव पद को पाता।
ऐसा, चिन्तन लोक भावना-में करता भवि सुख पाता॥

[अशुचित्व अनुप्रेक्षा]

शरीर की अशुचिता

43. देह अस्थि से बनी, मांस से-लिप्त, त्वचा से ढकी हुई।
भरी कीट के समूह से भी, अशुचि से भी सनी हुई॥
ऐसा तन यह पवित्र ना है, भले बाह्य सुन्दर दिखता।
निर्मोही इस तन को निश-दिन, अशुचि थैली सम लखता॥

सड़न गलन शरीर का स्वभाव

44. देखो तन यह दुर्गन्धित है, अन्दर कुरूप भी होता।
गन्दे मल से भरा हुआ है, जड़ वा मूर्तिक जो होता॥
सड़ना गलना स्वभाव जिसका, नहीं सदा रहने वाला।
बहिरातम है ऐसे तन को, अपना वह कहने वाला॥

शरीर सप्तधातुमय है

45. इन तन में रस रुधिर मांस व, गंदी चर्बी भरी सदा।
हड्डी मज्जा जिस तन में है, नहीं शुद्धता कहीं कदा॥
मवाद, मूत्र व चर्म सहित तन, कीट बहुलता भारी है।
दुर्गन्धित है तथा अचेतन-काया विनाशकारी है॥

देहातीत आत्मा की शुद्धता का चिंतवन

46. आत्म देह से भिन्न रहा है, कर्मों से विरहित जानो।
अनन्त सुख का धाम रहा जो, शुद्ध आत्म वह शुभ मानो॥
ऐसा चिन्तन बार-बार कर, आतम में रमना जानो।
निश्चय का है सौख्य निराला, मुनि बन उसको पहचानो॥

[आस्रव अनुप्रेक्षा]

कर्मास्रव के कारण

47. आगम में मिथ्यात्व अविरति व, कषाय अरु जो योग कहे।
आस्रव के ये हेतु रहे हैं, भव पीड़ा के रोग रहे॥
पञ्च पञ्च चउ तीन भेद ये, जिनके क्रमशः पहचानो।
ये ही जग में भरमाते हैं, इनसे बचना सब जानो॥

मिथ्यात्त्व और अविरति के भेद

48. पञ्च भेद मय मिथ्यादर्शन, भव का कारण ध्यान रहे।
एकान्त अरु विपरीत, संशय, विनय तथा अज्ञान रहे॥
अविरति भी वह पञ्च तरह की, हिंसादिक मय होती है।
पञ्च पाप को करे आत्म जब, दुख्ख बीज को बोती है॥

कषाय और योग के भेद

49. क्रोध, मान, माया व लोभ ये, चार कषायें जब होतीं।
आतम के शुभ गुण धर्मों को, ढकती सबको दुख देतीं॥
मन, वच, काया योग तीन की, होय क्रिया जब आस्रव है।
जब तक योग रहित न हों हम, तब तक चलता आस्रव है॥

योग के शुभाशुभ भेद

50. मन, वच, तन इन तीनों योगों, के होते हैं दो दो भेद।
अशुभ व शुभ इन दो भेदों में, गर्भित योगों के हों भेद॥
भोजन, भय, मैथुन व परिग्रह, संज्ञाएँ ये जहाँ रहीं।
अशुभ रूप ये मन हैं मानी, पाप हेतु भी वहाँ रहीं॥

अशुभ भाव ही अशुभ मन है

51. कृष्ण, नील, कापोती लेश्या, इन्द्रिय-सुख की लालचता।
ईर्ष्या और विषाद जहाँ तब, मन वह पापों में रचता॥
अशुभ मनस् में कारण हैं ये, आस्रव जिनसे होता है।
मन का आस्रव मुख्य कहा है, विषयों में जब खोता है॥

कषाय नोकषाय रूप परिणाम अशुभ मन है

52. राग-द्वेष व मोह तथा वे, नो कषाय हास्यादि जहाँ।
रहें सूक्ष्म, स्थूल जहाँ भी, कहा अशुभ मन आद्य वहाँ॥
हास्य, रति व अरति, शोक, भय, और जुगुप्सा, तीनों वेद।
नो कषाय में आते हैं ये, स्त्री, नर वा नपुंसक वेद॥

अशुभ वचन और अशुभकाय

53. भोजन, स्त्री, राज्य कथा अरु, चोर कथा हैं अशुभ वचन।
अशुभास्त्रव के कारण हैं जो, पाप, निंद हैं, अशुभ वचन॥
बंधन, छेदन और मारने-रूप क्रिया जब होती है।
अशुभ काय है जिसको जानो, दुख की कारण होती है।

व्रत समिति रूप शुभ परिणाम शुभ मन है

54. पूर्व कथित उस अशुभ भाव अरु, अशुभ द्रव्य को पूरा छोड़।
व्रत, समिति वा शील संयमित, रूप भाव को पूरा जोड़॥
अपने परिणामों को शुभमय, जहाँ बनाया जाता है।
उसको शुभमन जिनवर द्वारा, जग में गाया जाता है॥

शुभ वचन और शुभ काय का कथन

55. जिन वचनों से भव का छेदन, होता उनको शुभ कहते।
जिनदेवादिक की पूजा जो, करें काम वह शुभ कहते॥
स्तुति, भक्ति, पूजनादि में, शुभ वचनों को भवि कहते।
देव-शास्त्र-गुरु सेवा करके, शुभ काया-सह-भवि रहते॥

संसार-परिभ्रमण कर्मास्त्रव के कारण

56. बहु दोषों की तरंग व जहँ, दुख रूपी हैं जलचर जीव।
ऐसे जन्म मृत्यु सागर में, सदा भ्रमण है करता जीव॥
जिसका कारण कर्मास्त्रव है, जिसे न लखता अज्ञानी।
पाप कर्म से धर्म-मार्ग को, ना पाता कहते ज्ञानी॥

ज्ञानपूर्वक क्रिया मोक्ष का कारण

57. कर्मास्त्रव के कारण भव के, घोर महासागर में जीव।
डूबे जहाँ महा दुख पाता, अतः बचे वह ज्ञानी जीव॥
जहाँ क्रिया जो धर्मात्मा की, ज्ञान सु-पूर्वक होती है।
कर्मों का संवर करे मुक्ति, परम्परा से देती है।

आस्रव मोक्ष का साक्षात् कारण नहीं

58. प्राणी कर्मास्त्रव के कारण, भव-सागर में भ्रमण करे।
अतएव आस्त्रव की क्रिया सह, कैसे भव का शमन करे॥
छिद्र सहित वह नाव कभी ना, सागर पार लगाती है।
कर्मास्त्रव सह क्रिया शीघ्र जो, मोक्ष नहीं दे पाती है॥

परम्परा से भी आस्रव से मोक्ष नहीं

59. आस्त्रव कारण क्रिया रही जो, नहीं मोक्ष दे पाती है।
चाहे कहिए परम्परा से, भव में ही उलझाती है।
आस्त्रव भव का भ्रमण हेतु है, अतः निन्द कहलाता है।
जब तक आस्त्रव चलता भवि के, नहीं मोक्ष पद पाता है॥

निश्चय से आत्मा के कर्मास्रव नहीं

60. मिथ्यात्वादिक भेद कहे जो, निश्चय से ना निज के हैं।
जीव शुद्ध है निश्चय नय से, कर्म देह ना निज के हैं॥
आत्मा आस्त्रव रहित रहा है, ऐसा मुनि चिन्तन करते।
निज का अनुभव निज में लेते, तत्त्वों का मन्थन करते॥

[संवर अनुप्रेक्षा]

मिथ्यात्व का निरोधक सम्यक्त्व

61. जो चल, मल व अगाढ़ दोष तज, निर्मल समकित गहता है।
दर्शन रूप सु-दृढ़ कपाट से, संवर पथ को गहता है॥
मिथ्यादर्शन रूपी आस्त्रव, द्वार बंद हो जाता है।
अनन्त भव का बंध सान्त हो, जिन-वच की यह गाथा है॥

आस्रव द्वार के निरोधक हेतु

62. जहाँ अहिंसा सत्य अचौर्य व, ब्रह्मचर्य निस्संग कहे।
इनसे अविरति रूपी आस्त्रव, निरोधी साधु संघ रहे॥
जब कषाय के अभाव रूपी, फाटक वे लग जाते हैं।
क्रोध, मान, माया व लोभ के, आस्त्रव वे रुक जाते हैं॥

अशुभ और शुभ उपयोग के निरोधक हेतु

63. शुभोपयोग की होय प्रवृत्ति, अशुभ योग का संवर हो।
शुद्धोपयोगी बने आत्मा, शुभ का संवर संभव हो॥
पाप-प्रवृत्ति छोड़े भवि जब, पुण्य क्रिया तब होती है।
आत्म ध्यान में लीन साधु हों, पुण्य क्रिया भी रुकती है॥

ध्यान संवर का कारण

64. पुनः सुनो वह शुध उपयोगी, धर्म, शुक्ल शुभ ध्यान करे।
अतः ध्यान संवर का कारण, साधु सदा सु-विचार करें॥
जब तक मुनि समिति आदिक को, पालें धर्म-ध्यान करते।
समता सह वे शुध उपयोगी, धर्म, शुक्ल ध्यानी बनते॥

निश्चय से आत्मा संवर रहित

65. निश्चय नय से सदा जीव के, संवर नहीं कहा जाता।
क्योंकि उसका शुद्धभाव है, संवर विरहित कहलाता॥
जब आतम यह कर्म रहित है, वहाँ बंध न मोक्ष कहा।
निश्चय में हो किसका संवर, जीव जहाँ सुविशुद्ध रहा॥

[निर्जरा अनुप्रेक्षा]

जिस कारण से संवर उसी से निर्जरा भी

66. बँधे हुए उन कर्म प्रदेशों, का गलना जब होता है।
उसे निर्जरा कहा प्रभो ने, संवर भी वह होता है॥
जिस कारण से कर्म निर्जरा, संवर भी उस कारण हो।
गुप्ति समिति व तपादि कहते, ये दोनों को कारण हों॥

निर्जरा के भेद

67. वही निर्जरा दो भेदों सह, आगम में पहचानी है।
पहली अपने काल कही व, दूजी तप मय मानी है॥
प्रथम निर्जरा सविपाकी वह, चारों गतियों में होती।
अविपाकी वह काल पूर्व जो, व्रत से युत भवि के होती॥

[धर्म अनुप्रेक्षा]

श्रावक और मुनि धर्म के भेद

68. उत्तम आत्मिक सुख में भगवन्, लीन सदा जिन कहलाते।
समवसरण में गृहि वा मुनि के, धर्म-मार्ग हैं बतलाते॥
सागारों की ग्यारह प्रतिमा, मुनियों के दस धर्म कहे।
सम्यग्दर्शन पूर्वक पालें, सदा नशाते कर्म रहे॥

श्रावक के ग्यारह धर्म (प्रतिमाएँ)

69. दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त, रात्रिभुक्ति त्यागी।
ब्रह्मचर्य धारे जो नियमित, बहुआरम्भ संग त्यागी॥
अनुमति न पापों की देता, उद्दिष्ट न आहारी हो।
देशव्रती वह ग्यारह प्रतिमा, का नियमित शुभ धारी हो॥

मुनियों के दशधर्म

70. उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम धारी।
तप अरु त्याग तथा मुनिवर वे, आकिञ्चन्य धर्मधारी॥
ब्रह्मचर्य सह दशों धर्म के, पालन करते निशिदिन हैं।
मुनियों के इन दश धर्मों से, कर्म नशाते प्रतिदिन हैं॥

उत्तम क्षमा धर्म

71. क्रोध भाव के जगने में यदि, हो प्रत्यक्ष बाह्य कारण।
तो भी किञ्चित क्रोध न आवे, क्षमा भाव का हो धारण॥
समता रखकर मुनिवर वे सब, उपसर्गों को सह लेते।
परिषह सहते कर्म खपाते, उत्तम शिव सुख गह लेते॥

उत्तम मार्दव धर्म

72. रूप, जाति, कुल, ज्ञान, तपों का, तथा शील का किञ्चित भी।
गर्व नहीं करता जो साधक, पाप बँधे न किञ्चित भी॥
ऐसा यति वह मार्दव धर्मी, मोक्षमार्ग में लीन रहे।
कर्म नाश कर शुद्ध बने फिर, मिलता सुख स्वाधीन रहे॥

उत्तम आर्जव धर्म

73. कुटिल भाव को छोड़ साधु जो, निर्मल मन सह रहता है।
उसके आर्जव धर्म कहा है, अन्तर सुख को गहता है॥
नहीं छुपाये दोष कभी भी, परिमार्जित आतम करता।
माया-त्यागी दृढ़ वैरागी, गुणधर्मी शिवपद लहता॥

उत्तम सत्य धर्म

74. पर संतापों के कारण उन, वचनों को ना मुनि कहते।
वे तो निज-पर के हितकारक, जिन वचनों को मित कहते॥
सज्जन लोगों के आगे मुनि, भाषा समिति सह बोलें।
धर्म-मार्ग की करें प्रभावन, वाणी में अमृत घोलें॥

उत्तम शौच धर्म

75. श्रेष्ठ साधु वे कांक्षा विरहित, जग इच्छाओं के त्यागी।
भाते वे वैराग्य भावना, शौच धर्म के हैं भागी॥
प्रकर्ष ना वे लोभ धारते, धरें भावना पावन वे।
विषय-वासना दूर भागती, ऐसा जीते जीवन वे॥

उत्तम संयम धर्म

76. मन, वच, तन की त्याग प्रवृत्ति, इन्द्रिय विजयी जो बनते।
पञ्च महाव्रत, तथा समितियाँ, पालन में वे रुचि रखते॥
ऐसे मुनि के सदा नियम से, संयम धर्म कहा जाता।
संयम पथ ही पाप बंध से-बचा, मोक्ष को ले जाता॥

उत्तम तप धर्म

77. ध्यान अरु स्वाध्याय करें मुनि, विषय, कषाय दूर करते।
तभी आतमा के चिन्तन में, नित्य मुनीश्वर वे रमते॥
बारह तप को तपने वाले, मुनिवर के तपधर्म कहा।
आत्म शुद्धकर मोक्ष दिलाता, धन्य वही जिन धर्म रहा॥

उत्तम त्याग धर्म

78. सब द्रव्यों से मोह त्याग कर, तीन तरह निर्वेद रहे।
भव, शरीर व भोगों में ना, राग कभी ना खेद रहे॥
संयत लोगों को करते जो, ज्ञान सु दान अपरिमित हैं।
ऐसे मुनि वे शिव सुख पाने, त्याग धारते नियमित हैं॥

उत्तम आकिंचन्य धर्म

79. बाह्याभ्यन्तर सभी परिग्रह, छोड़े यति निस्संग रहा।
भव में सुख-दुख देने वाले, भाव रोकना अंग रहा॥
सदा विचरता निर्द्वन्दी यति, समता रखता जीवन में।
आकिञ्चन्य धर्म होता उस, अनगारी के जीवन में॥

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

80. जो मुनि अबलाओं को लखकर, या उनके सब अंगों को।
नहीं राग जगता है जिसके, तजता मोह प्रसंगों को॥
वह मुनि दुर्धर ब्रह्मचर्य को, धारण हेतु समर्थ रहा।
आत्म-ब्रह्म में रमण करे वह, मोक्ष मिले यह अर्थ रहा॥

मुनि धर्म से निर्वाण की प्राप्ति

81. निकट भव्य जो श्रावक पद को, छोड़ श्रमण पद गहता है।
नहीं मोक्ष पद उसे छोड़ता, शीघ्र शिवालय गहता है॥
सर्व परिग्रह छोड़ साधु जो, शिवपथ में रुचि लेते हैं।
दश धर्मों को धार सदा वे, उत्तम सुख पा लेते हैं॥

निश्चय से द्विविध धर्म रहित आत्मा

82. निश्चय नय से जीव सदा गृहि, मुनि-धर्मों से भिन्न रहा।
मध्यस्थी यह रहे भावना, चेतन, तन भी भिन्न रहा॥
शुद्धातम का ऐसा चिन्तन, नित्य साधु वे करें सदा।
अष्ट कर्म को नष्ट करें वे, सिद्धालय में रमें सदा॥

[बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा]

बोधि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ

83. जिस उपाय से जीवातम को, सम्यग्ज्ञान प्रकट होता।
उस उपाय का चिन्तन करके, बोधि लाभ प्रकट होता॥
बोधि जगत् में दुर्लभतम है, जिसको होती जीव यहाँ।
भव्य वही आसन्न कहा है, शिवपद गहता जीव महा॥

स्वद्रव्य उपादेय है, ऐसा निश्चय सम्यग्ज्ञान है

84. कर्मजनित हैं जो पर्यायें, वा क्षयोपशम बोध रहा।
निश्चय में वे हेय जानकर, निज चेतन संबोध रहा॥
ऐसा निश्चय करना भवि के, सम्यग्ज्ञान कहा जाता।
ऐसा दुर्लभ बोध केवली; बना, मोक्ष को ले जाता॥

केवल आत्मा ही स्वद्रव्य है

85. मिथ्यात्वादि असंख्यात वे, लोक मात्र उन कर्मों कीं।
मूलोत्तर जो रहीं प्रकृतियाँ, आत्म नहीं पर द्रव्यों कीं॥
रहा आत्म उन द्रव्यकर्म वा, भाव कर्म नो कर्मों से।
भिन्न हमेशा निश्चय नय से, सदा साथ निज धर्मों से॥

निश्चय में हेयोपादेय का विकल्प नहीं

86. ऐसा हेय रु उपादेय का, ज्ञान जीव को होता है।
निश्चय नय में हेय तथा वह, उपादेय ना होता है॥
विकल्प ना वह ग्रहण त्याग का, आत्मलीन हों जब मुनिवर।
भव परिवर्तन छूटें जिय के, अतः बोधि चिन्तें मुनिवर॥

[उपसंहार]

अनुप्रेक्षाएँ ही प्रतिक्रमण आदि हैं

87. द्वादश इन अनुप्रेक्षाओं में, प्रत्याख्यान समाहित हो।
प्रतिक्रमण अरु आलोचन भी, गर्भित होता निजहित हो॥
और समाधि भी जिनमें हो, ऐसी अनुप्रेक्षाओं का।
चिन्तन नित्य करें व निशदिन, त्याग करें इच्छाओं का॥

रात-दिन सामायिक प्रतिक्रमण करें

88. निज में जितनी होय शक्ति वह, निश-दिन प्रतिक्रम प्रत्याख्यान।
समाधि, समता, आलोचन भी, करें हृदय से आतम ध्यान॥
नहीं शक्ति वह अक्ष विषय में, खोते हैं आतम दर्शी।
ज्ञान, ध्यान, तप, दश धर्मों में-खोते हैं शिवपथ दर्शी॥

जो भी मोक्ष गये बारह भावना के चिंतवन से ही

89. जो भी भव्य अनादिकाल से, अब तक मोक्ष महल पहुँचे।
भलि, भाँति इन अनुप्रेक्षाओं-का चिन्तनकर शिव पहुँचे॥
ऐसा शिवपद पाने वाले, सब सिद्धों को नमता मैं।
सारे दुःख व कर्म नशाऊँ, शाश्वत पाऊँ समता मैं॥

अनुप्रेक्षा महात्म्य

90. ज्यादा कहने से क्या होता, इतनी बात सुनो भविजन।
भूतकाल में जितने भी वे, मुक्त हुए हैं जो भविजन॥
जितने भी फिर महापुरुष वे, आगे शिवपद पायेंगे।
वे सब जन इन अनुप्रेक्षाओं, की महिमा से पायेंगे॥

भावना भाने का फल

91. इतना जो कुछ यहाँ मुनीश्वर, कुन्द-कुन्द ने बतलाया।
निश्चय अरु व्यवहार धर्ममय, जिनवचनों को है गाया॥
जो भवि शुद्ध हृदय से इनका, चिन्तन बार-बार करता।
अनुप्रेक्षाओं की सीढ़ी से, ''आर्जव'' बन शिवगिरि चढ़ता॥

प्रशस्ति

92. कुन्द कुन्द आचार्य थे, जिनका ज्ञान महान।
चौरासी पाहुड़ रचे, जिनको सदा प्रणाम॥

★★★

93. स्वर्ण समा जिनका रहा, तन वह कान्तिमान।
कुन्द-कुन्द आचार्य वे, ज्ञानी थे छविमान॥

★★★

94. चक्री ने जिनको उठा, इलायची सम हाँथ।
विदेह में जिनको कहा, एलाचार्य सु-नाथ॥

★★★

95. पतित पिच्छ जब मार्ग में, गिद्धपिच्छि उपयोग।
गिद्धपिच्छि आचार्य ये, नाम रखा शुभ योग॥

★★★

96. सीमंधर भगवान से, ज्ञान मिला फिर शास्त्र।
लिखे बहुत, गर्दन झुकी, वक्रग्रीव पद पात्र॥

★★★

97. ऊर्जयन्त शास्त्रार्थ में, पद्मनन्दी यह नाम।
आद्य दिगम्बराः कहा, देवों ने, शुभ काम॥

★★★

98. वारस अणुवेक्खा कहीं, अध्यातम की खान।
चिन्तन कर योगी महा, पावेंगे निर्वाण॥

★★★

99. दुग्ध तपाने से जहाँ, घृत पाते हैं लोग।
बारह भावन योग से, आत्म तपा शिव भोग॥

★★★

100. सतना नगरी में रहा, ग्रीष्मकाल का योग।
पच्चिस सौ तेतीस में, बना काव्य संयोग॥

★★★

101. सागर से जैसे जहाँ, नाव देत है कूल।
अनुप्रेक्षाओं से गहूँ, ''आर्जव'' बन शिव चूल॥

देवसेनाचार्य विरचित

तत्त्वसार

का पद्यानुवाद

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

ग्रन्थ प्रतिज्ञा रूप मंगलाचरण में सिद्धों को नमन :-

1. आत्मध्यान रूपी ज्वाला से, कर्मेंधन को जला दिया।
विशुद्ध निर्मल आत्मस्वरूपी, निजस्वभाव को प्राप्त किया॥
ऐसे उत्तम सिद्धप्रभो को, नमस्कार मंगल करके।
तत्त्वसार यह ग्रन्थ कहूँगा, सम्यक्ध्यानी बनकरके॥

पूर्वाचार्यों द्वारा धर्म प्रवर्तन हेतु भव्यों को तत्त्व कथन :-

2. ऐसे अक्षय तीन लोक में, पूर्वाचार्यों ने हमको।
धर्मसुरथ को सम्यक्ता से, वर्ताने कारण जगको॥
भव्यों के सद्बोध हितार्थ, बहुत भेद में तत्त्व कहा।
जो धारेंगे इसे हृदय में, वे पावेंगे मोक्षमहा॥

स्वगत तत्त्व व परगत तत्त्व परिचय :-

3. दो तत्त्वों में एक स्वगत है, दूजा परगत है जानो।
स्वगत तत्त्व वह निजआत्मा है, निज के आश्रित है मानो॥
परगत तत्त्व हि परमेष्ठी है, निज से अन्य हि होता है।
अर्ह-सिद्धाचार्य-उपाध्याय, -साधु सुमुक्ति प्रदाता है॥

वीतराग मंत्र द्वारा पुण्य बंध व परम्परा से मोक्ष :-

4. परमेष्ठी के वाचक अक्षर-मंत्रों को जो भव्यातम।
ध्याता है शुभकर्म बंध हो, सुख पाता है वह आतम॥
स्वर्गादिक का वैभव पाकर, मनुष्य लोक में आता है।
बनकर मुनि वह, परम्परा से, मोक्ष सुखी हो जाता है॥

सविकल्प तत्त्व में आस्रव व निर्विकल्प तत्त्व में संवर :-

5. विकल्प सह वा विकल्प विरहित, स्वगत तत्त्व द्वि रूप कहा।
स्वगत तत्त्व जो विकल्प वाला, कर्मास्रव से सहित रहा॥
निर्विकल्प जो निःसंकल्पी, कर्मास्रव से रहित रहा।
इन्द्रिय विषयी तत्त्व सदा ही, संकल्पी निजतत्त्व कहा॥

इच्छा निरोध से मन विजय, निर्विकल्पता व स्व अवस्थान :-

6. इन्द्रिय विषयों के तजने से, मन वश निश्चित हो जाता।
तभी जान लो निर्विकल्प वह, स्वगत तत्त्व उपजे भाता॥
ऐसे उस मंगल अवसर पर, सम्यक् ध्यानी आतम का।
अवस्थान हो स्व-स्वरूप में, सुख अनुभव हो आतम का॥

निश्चल मन से निर्विकल्प नित्य शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति :-

7. मन जब निश्चल वश में होता, सर्व विकल्प हि नशते हैं।
निर्विकल्प वा निश्चल थिर उस, निज आतम में वशते हैं॥
शुद्ध स्वभाव हि थिर होता है, ऐसा योगी साधु महान।
शुद्धातम वह शुध उपयोगी, मोक्षमार्ग सुख पाये जान॥

निश्चय से शुद्धभाव रूप आत्मा; रत्नत्य चेतनरूप:-

8. जो निश्चय से शुद्ध भाव है, वही रहा है आत्मस्वरूप।
दर्श-ज्ञान-चारित्र रूप है, व चैतन्य शुद्ध स्वरूप॥
अभेद होता रत्नत्रय जँह, वही स्वरूपाचरण कहा।
यथाख्यात चारित्र कहो या, वीतराग वह आत्म रहा॥

निर्विकल्प तत्त्व ही मोक्ष का साधन व ध्याने योग्य है:-

9. निर्विकल्प जो आत्म तत्त्व है, वही सार है सुखकारक।
वही मोक्ष का कारण जानो, प्रमुख रूप से अघ हारक॥
उस विशुद्धमय तत्त्व ज्ञान से, परम साधु तुम होकर जीव।
पूर्ण ग्रन्थ तज निर्ग्रन्थी बन, आत्म ध्यान को करो सजीव॥

बाह्याभ्यन्तर संग रहित जिनलिङ्गयुत श्रमण निर्ग्रन्थ है :-

10. धन धान्यादिक बहिर् ग्रन्थ वा, मिथ्यात्वादिक अन्तर के।
परिग्रह त्यागे मन वच तन से, साधु रूप को धर करके॥
जिनस्वरूप का मोक्षमार्ग में, आश्रय लेता भव्य श्रमण।
वही निर्ग्रन्थ मुनि कहलाता, लोक पूज्य है वही श्रमण॥

सुख दुखादिक में समताधारक यति के ही ध्यान संभव है :-

11. लाभ-अलाभ हो सुख-दुःख अथवा, जीवन मरण भी क्यों न हो।
मित्र व परिजन तथा शत्रु हो, इनमें जो सम भावक हो॥
निश्चित ही वह योगी जग में, करे सुध्यान समर्थ रहा।
कर्म शत्रु भी हारें जिससे, मिले मोक्ष यह अर्थ रहा॥

सुयोग्य कालादि के मिलने पर मुक्ति योग्य सामग्री की प्राप्ति :-

12. जैसे-जैसे पुण्यकर्म की, काल लब्धियाँ आती हैं।
वैसे-वैसे शिव-मग के सब, साधन मिलते जाते हैं॥
संज्ञी, मानव-पन, पर्याप्तक, आर्य क्षेत्र व भाव विशुद्ध।
सद्गुरु, दीक्षा, ध्यान, केवली, कर्म हरे फिर बनता सिद्ध॥

चरण बिन पर्वतारोहण सदृश ध्यान बिन कर्मक्षय असंभव :-

13. बिन पैरों के जैसे मानव, मेरु शिखर चढ़ना चाहे।
वैसे ध्यान बिना योगी जो, कर्म काटना भी चाहे॥
आर्त्त, रौद्र ध्यानों को जिय ने, अनादिकाल से किया यहाँ।
धर्म-शुक्ल जो ध्यान करे तो, मिलता उसको मोक्ष महाँ॥

अश्रद्धानी व भ्रष्टात्माएँ ध्यान साधना में देती हैं काल दोष :-

14. धर्म-मार्ग के संदेही वे, विषय सुखों के चाहक वे।
इन्द्रिय विषयों के भोगी वे, मार्ग भ्रष्ट, धनग्राहक वे॥
ऐसे कितने मत्त पुरुष वे, दोष; काल को देते हैं।
नहीं ध्यान के योग्य काल है, कहते कर्म संजोते हैं॥

रत्नत्रय पालन से उत्तम देवपद व मनुष्य भव से मोक्ष :-

15. लखो! आज भी, रत्नत्रय से, शुद्ध आत्म जो ध्यान करे।
स्वर्गलोक में देव बने या, लौकांतिक पद प्राप्त करे॥
स्वर्गलोक से आकरके वह, उत्तम नर कुल पाता है।
संयम धारक ध्यानी बनकर, मोक्ष सुखी हो जाता है॥

शाश्वत सुख हेतु राग-द्वेष-मोह तज आत्म ध्यानी बनो :-

16. अतः यदि तुम शाश्वतसुख को, चाहो तो पुरुषार्थ करो।
राग-द्वेष व मोह छोड़कर, सदा ध्यान अभ्यास करो॥
आतम-ध्यानी शुभ-ध्यानों से, कर्मों का संवर करता।
कर्म खपाता, शिव सुख पाता, शाश्वत सुख अनुभव करता॥

निश्चय-नय से आत्मा दर्शन-ज्ञानादि-मय जानो :-

17. निश्चय नय से रही आत्मा, दर्शन ज्ञान प्रधान जहाँ।
असंख्य प्रदेशी, मूर्त्त रहित है, गृहीत देह प्रमाण वहाँ॥
ऐसे स्वरूप वाली चेतन, -जानो, पर से मोह तजो।
निज के सर्व गुणों को ध्याकर, परमातम को शीघ्र भजो॥

बाह्याभ्यान्तर विकल्प छोड़; शुद्धात्मा का ध्यान करो :-

18. रागादिक उन विभाव भावों, -को चेतन अन्दर से तज।
बाह्याभ्यन्तर विकल्प तजकर, मन से निज चेतन को भज॥
कर्मकलंक रहित शुद्धात्मा, -का अन्तर से ध्यान करो।
परम शांति को पाकर चेतन, निजानंद को प्राप्त करो॥

मैं क्रोधादि विभावों से रहित निरञ्जन रूप आत्मा हूँ :-

19. ना है जिसके क्रोध मान वा, माया लोभ व शल्य नहीं।
न लेश्या न जन्म, जरा न, -मरण, निरंजन आत्म रही॥
कर्माश्रित जो रही अवस्था, वह व्यवहार कही जाती।
निश्चय में तो ज्ञान-दर्श मय, शुद्ध-चेतना है भाती॥

निरञ्जन रूप आत्मा में कोई कला और संस्थानादि नहीं :-

20. शुद्धात्मा के कला नहीं है, न कोई संस्थान रहा।
नहीं मार्गणा, गुणस्थान न, जीव, लब्धि न थान रहा॥
ना कोई वह बंध थान है, नहीं उदय स्थान रहा।
आत्मज्ञ वह आत्म रही है, निज में ही आराम रहा॥

स्पर्श व रसादि रहित शुद्ध चेतना व निरञ्जन रूप मैं हूँ :-

21. जिसके न स्पर्श रहा है, न रस, गंध व रूप नहीं।
शब्दादिक भी नहीं रहा है, शुद्ध चेतना रूप सही॥
कर्माञ्जन से रहित आत्मा, अतः निरञ्जन कहलाता।
अनंतगुणों का पिण्ड आत्मा, लोक शिखर पर है भाता॥

व्यवहार नय से अनेक भेद रूप नोकर्मादिक रूपपर्यायें :-

22. जब व्यवहार कथन होता है, चेतन के बहु भेद कहे।
सर्व कर्म नो-कर्म सहित वे, पर्यायाश्रित जीव रहे॥
जिन्हें खोजते कहें मार्गणा, गुणस्थान भी साथ रहें।
कषाय-योग से निर्मित होते, -भव में सबके, नाथ कहें॥

दुग्ध, जल के एकत्व सदृश जीव, कर्म का सम्बन्ध :-

23. अपने-अपने लक्षण से युत, किन्तु मिलें एकत्त्व रहा।
दुग्ध-नीर का न्याय समझ लो, भेद-ज्ञान के साथ रहा॥
जब तक रहता अजीव रूपी-जड़ कर्मों का सत्त्व वहाँ।
संसारी है भव में भ्रमता, पराधीन वह तत्त्व जहाँ॥

दुग्ध व जल के भेद सदृश ध्यान द्वारा चेतन अचेतन में भेद :-

24. जैसे कोई तर्क योग से, नीर दुग्ध का भेद करे।
वैसे ज्ञानी ध्यान योग से, चेतन तन का भेद करे॥
जहाँ देह अपनी न; समझो, वहाँ दूर वे सभी पदार्थ।
नहीं कदा हो सकते अपने, जड़ हैं वे कहता परमार्थ॥

ध्यान व भेद-विज्ञान द्वारा परमब्रह्म रूप स्वात्मा का ग्रहण :-

25. ध्यान योग से शरीरादि उन, पुद्गल, जिय में भेद करो।
कर्म वर्गणा भी पुद्गल हैं, भेद करो, न देह धरो॥
सिद्ध स्वरूपी परम ब्रह्म सम, निज आत्मा स्वीकार करो।
रचो उसी में, पचो उसी में, मुनि बन निज उद्धार करो॥

शक्ति रूप से सिद्धात्मा का इस शरीर में स्थिरत्व :-

26. जैसे निर्मल ज्ञानमयी वह, सिद्धलोक में सिद्धातम।
रहता है वह परम ब्रह्म मय, इस तन में वसता आतम॥
यथा दुग्ध में घृत रहता है, ज्ञानी श्रद्धा दर्शाता।
वैसे तन में शक्ति रूप से, सिद्धपना नित है भाता॥

निश्चय से सिद्धों सम कर्म-नोकर्मादिक रहित निरालंबपना :-

27. सिद्ध रहे हैं तन से विरहित, अष्ट कर्म से रहते दूर।
राग-द्वेष न परम शुद्ध गुण, -केवलज्ञानादिक सम्पूर्ण॥
उसी तरह मैं सिद्ध, शुद्ध नित, एक स्वरूप निरालम्बी।
शक्ति रूप से कहलाता हूँ, अनन्त गुणों का अवलम्बी॥

शुद्ध नय से मैं सिद्ध व अनन्तज्ञादि से समृद्धादि रूप हूँ :-

28. मैं हूँ सिद्ध व शुद्ध स्वरूपी, अनन्त ज्ञानादि परिपूर्ण।
तन प्रमाण व नित्य रहा हूँ, असंख्य प्रदेशों से सम्पूर्ण॥
न दिखता हूँ चर्म चक्षु से, अमूर्त्त मैं कहलाता हूँ।
शक्ति रूप से, अनुभवि यति के, तीन गुप्ति में भाता हूँ॥

मन व इन्द्रियों की प्रवृत्ति रुकने पर आत्मब्रह्म की प्राप्ति :-

29. मनस् विकल्पों, संकल्पों का, स्थिर होना जब होता।
इन्द्रिय विषयों का भी देखो, वह व्यापार बंद होता॥
तभी समझ लो योगी जन का, ध्यान एकता पाता है।
उसी ध्यान से ब्रह्म स्वरूपी, आत्म प्रकट हो जाता है॥

उपशम भाव से सूर्योदय सम शुद्ध स्वरूपोदय :-

30. यथा-यथा मन चंचलता वा, अक्ष विषय उपशम होते।
तथा-तथा ही आतम के निज, उत्तम गुण भासित होते॥
नभ में यथाहि तमः दूरकर, -सूर्य प्रकाशित होता है।
वैसे निज शुद्धात्म स्वरूप हि, प्रकटित भासित होता है॥

मन-वचन-काय की निर्विकारता से आत्मा से परमात्मा :-

31. यदि योगी के मन-वच-तन वे, निर्विकार हो जाते हैं।
तो देखो वे अन्तरात्मा, निज गुण-वैभव पाते हैं॥
वीतराग बन ध्यान योग से, योगी जग में वह भाता।
कर्म निर्जरा करके निज में, परम स्वरूप निज प्रकटाता॥

त्रिगुप्ति से निरास्रव हो कर्मों का स्वमेव गलन :-

32. मन-वच-तन की निश्चलता से, कर्माश्रव ही रुक जाता।
तब चिरकालिक बंधा हुआ वह, कर्म बंध भी गल जाता॥
नहीं उदय में आ करके फिर, फलित कभी भी होता है।
स्वस्थ स्वयं में होकर योगी, शिव में शोभित होता है॥

मन की पर द्रव्यों में प्रवृत्ति से मोक्ष नहीं; शुद्ध भाव से मोक्ष :-

33. पर द्रव्यों में भटके जब तक, मन विक्षिप्त बना रहता।
तब तक देखो उग्रतपस्वी, आकुलताओं सह रहता॥
पर द्रव्यों की आशा जिय को, नहीं मोक्ष पद दे पाती।
शुद्ध-भाव में लीन आत्मा, शीघ्र मोक्ष-पद पा जाती॥

पर द्रव्यों में ममत्व धारक कर्मों को बांधता है :-

34. देहादिक हैं पर पदार्थ वे, जब-तक ही वह जीव वहाँ।
ममत्व भाव को रखता है जो, पर-समयी कहलाय वहाँ॥
निज-आतम को छोड़ जहाँ जो, पर में बुद्धि लगाता है।
पर-समयी वह अहोरात्र ही, विधि से बंधता जाता है॥

अज्ञानी व ज्ञानी की इन्द्रिय विषयों के प्रति मान्यता :-

35. अक्ष विषय में लीन आत्मा, मूढ़ कषायी अज्ञानी।
नित्य विषय में रुष्ट-तुष्ट हो, नहीं धर्म का श्रद्धानी॥
किन्तु देख लो ज्ञानी आतम, इससे विलग स्वभावी हो।
श्रद्धा, विवेक, चारितधारी, राग-द्वेष का त्यागी हो॥

ज्ञानी का चेतन अचेतन के प्रति आध्यात्मिक चिंतवन :-

36. इस जग में चेतन से विरहित, पदार्थ दिखते सारे हैं।
ना दिखते हैं जीवातम वे, जो चेतन को धारे हैं॥
मैं हूँ चेतन स्वभाव वाला, ना दिखने में आता हूँ।
दिखता; पर है, राग द्वेष क्यों? अपने को समझाता हूँ॥

योगी का जग-जीवों के प्रति माध्यस्थ भाव :-

37. तीन लोक में जितने प्राणी, अपने सदृश दिखते हैं।
किससे रुष्ट-तुष्ट होऊँ मैं, योगि; समान समझते हैं॥
जैसे मुझे हि सुख-दुख होता, वैसा अनुभव सब करते।
पर को दुख दें स्व सुख कारज, वे जन दुर्गति में पड़ते॥

निश्चय से सर्व जीव आत्मीय गुणों से समान :-

38. शुद्ध वाच्य उस निश्चय नय से, सर्व लोक के जीव यहाँ।
जन्म-मरण से मुक्त कहे हैं, प्रदेश सदृश रहे जहाँ॥
असंख्यात हैं प्रदेश सब में, आत्मीय गुण रहे समान।
ज्ञानमयी व दर्शन भी है, चेतन शक्ति सबके जान॥

नय द्वय से वस्तु स्वभाव का ज्ञायक रागादि से चलित नहीं :-

39. निश्चय अरु व्यवहार नयों से, यह ऐसा जो वस्तु स्वरूप।
जानें-देखें अनेकान्त से, न बदले वह धर्म स्वरूप॥
उसका मन वह राग-द्वेष वा, मोह-वशी हो नहीं डिगे।
निश्चय नय से आतम ध्यावे, गुण चिंतवन में आत्म पगे॥

राग-द्वेष से अप्रभावित मन निज तत्त्व को देखे; अन्य नहीं :-

40. जिस योगी का मन रूपी जल, राग-द्वेष आदिक द्वारा।
ना होता है डँवाडोल तब, स्वयं तत्त्व लखता प्यारा॥
जिसका मन संसार विकल्पों,- में रागादिक करता है।
निश्चित ही उस योगी को निज, -तत्त्व कभी न दिखता है॥

शांत सरोवर में रत्नावलोकन की तरह :-

41. यथा सरोवर के जल स्थिर, -होने पर जहँ पड़ा रतन।
नियम रूप से दिखाई देता, उसी तरह जानो चेतन॥
मन रूपी जल थमने से निज, निर्मल भावों में दिखता।
राग-द्वेष बिन वीतराग मुनि, निज को निज में है लखता॥

क्षण मात्र में सिद्धत्व की प्राप्ति का पुरुषार्थ :-

42. निर्मल स्वभाव वाले यति के, अक्ष विषय में रहित महान।
निजात्म तत्त्व जब दिखाई देता, श्रेष्ठ आत्मा बनता जान॥
अतिशय मानुष-पना प्रकट हो, पुरुषार्थी उस आतम में।
जिसने जोड़ा नाता निज से, मोक्ष प्रकट हो आतम में॥

परगत भाव को छोड़ शुद्ध स्वभावी निजात्मा की प्राप्ति :-

43. ज्ञानमयी निज तत्त्व छोड़कर, सर्वभाव परगत जानो।
उन्हें छोड़कर शुद्ध स्वभावी, निज आतम भजना जानो॥
निज स्वभाव की भावन से ही, कर्म सभी गल जाते हैं।
ऐसे योगी स्व-स्वभाव पा, मोक्ष महाफल पाते हैं॥

ध्यानी को निर्मल रत्नत्रयी वीतरागता की प्राप्ति :-

44. स्वसंवेदन चेतनादि से, सहित साधु आतम ध्याता।
वह योगी निर्मल रत्नत्रय- का धारक है बन जाता॥
ऐसा योगी वीतराग है, मोक्षमार्ग में कहलाता।
क्षपक श्रेणी में कर्म नाशकर, सिद्धालय में बस जाता॥

सचेतन व शुद्धभाव स्थित आत्म ध्याता निश्चय से दर्शनज्ञान चारित्र है:-

45. शुद्धोपयोगी शुद्धभाव में, -थित आतम को जो ध्याता।
तब आगम से उसे लोक में, निश्चय मार्ग कहा जाता॥
दर्श-ज्ञान-चारित्र तीन को, एक रूप अनुभव करता।
निश्चय रत्नत्रय का धारी, कर्म खपाता भव तिरता॥

आत्मानुभव बिन योगी के शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं :-

46. ध्यान करे फिर भी वह योगी, निश्चय में निज आतम को।
ना अनुभव कर पाता फिर तो, ना पाता शुद्धातम को॥
जैसे भाग्यहीन वह मानुष, रत्न सुमणि ना पा पाता।
बाह्य वस्तु वा पर्यायों तक, सीमित ही वह रह जाता॥

शरीराश्रित सुख में रत योगी के शुद्धात्म सुख की प्राप्ति नहीं :-

47. गहराई बिन नित्य तत्त्व को, निश्चित ध्यान करे योगी।
तो भी वह तन सुख में रत हो, अतः न आत्मलखे योगी॥
शुद्ध आत्म के स्वरूप को वह, नहीं प्राप्त कर पाता है।
यह व्यवहार उसे उलझाता, मुक्त नहीं हो पाता है॥

शरीर की ममता वाला बहिरात्मा कहलाता है :-

48. यह शरीर ना जाने कुछ भी, मूर्ख व नश्वर रूप रहा।
चेतन विरहित जड़ भी जो है, निज से वह पर रूप कहा॥
इस तन में जो ममत्व धारे, बहिरात्मा कहलाता है।
अप्रमत्त से प्रमत्त में आ, अज्ञानी बन जाता है॥

शरीर नश्वर ज्ञायक आत्मा को पंच देहों से मुक्ति :-

49. इस काया के सड़न गलन व, पतन, बुढ़ापा मृत्यु देख।
जो भव्यातम वैरागी बन, तन-आतम में रखे विवेक॥
तन को भूल आत्म को ध्याता, कर्म निर्जरा पाता है।
पंच देह औदारिक आदिक, छूटें शिव को जाता है॥

तप द्वारा उदीरित या स्वयं उदित कर्म से लाभ :-

50. तप द्वारा जो कर्म उदय में, लाकर भोग्य योग्य होता।
वही कर्म यदि स्वयं उदय में,- आया; बहुत लाभ होता॥
समदर्शी को अविपाकी वह, कर्म निर्जरा भाती है।
संवर पूर्वक कर्म निर्जरा, मोक्ष महल पहुँचाती है॥

कर्म के फल में राग-द्वेष के अभाव में मात्र कर्म निर्जरा :-

51. भविक कर्म के फल को भोगे, नहीं राग व द्वेष करे।
पूर्वोपार्जित कर्म नशाये, नया कर्म न बंध करे॥
भव में सुख-दुख निज कर्मों से, -आते; ज्ञानी ध्यान करे।
सहनशील बन समता धारे, तप-गुण से श्रृंगार करे॥

शुभाशुभ भाव हो ता कर्म का बंध अवश्य :-

52. कर्मों के फल में अज्ञानी, मोह-भाव से इस भव में।
शुभ व अशुभ भाव करता है, कर्म बाँधता इस जग में॥
विधि अष्ट ज्ञानावरणादि -बंधे जगत में भरमाते।
चारों गति वा- चौरासी उन, योनि सब में जन्माते॥

परमाणु मात्र भी राग से ज्ञानी की भी कर्मों से मुक्ति नहीं :-

53. जब तक योगी निजमन से पर-माणु मात्र वह राग जहाँ।
ना छोड़े; तब तक वह ज्ञायक, -न परमार्थ हि कहा वहाँ॥
ऐसा योगी, श्रमण साधु वह, न छूटे निज कर्मों से।
चाह लंगोटी की दुख देवे, बाह्य जाय निजधर्मों से॥

सुख-दुख में सहनशील ज्ञानी, दृढ़ ध्यानी का तप निर्जरा का हेतु :-

54. सुख-दुख को भी सहता ज्ञानी, शुभ ध्यानों में लीन रहे।
दृढ़ मानस होता है उसका, तप-तपता स्वाधीन रहे॥
ऐसे योगी का तप उत्तम, कर्म निर्जरा हेतु रहा।
आगम कहता शुक्ल-ध्यान वह, मोक्ष-धाम का सेतु रहा॥

निश्चय नय से संवर और निर्जरा रूप आत्मा का स्वरूप :-

55. नहीं छोड़ता निजभावों को, न पर में परिणत होता।
आत्म समाधि में रत होकर, -चिंतन, मनन लीन होता॥
ऐसा ध्यानी जीव नियम से, संवर कर्मक्षपण करता है।
अतः साधु वह संवर जानो, रूप निर्जरा का गहता॥

रत्नत्रय रूप आत्मा का स्वरूप :-

56. स्व-स्वभाव का अनुभव करता, -हुआ जीव पर भावों को।
छोड़े निश्चल चित्त होय वा, ना भजता पर भावों को॥
ऐसा जीवातम समदर्शन, -ज्ञान-चरण मय होता है।
निश्चय रत्नत्रय का धारी, क्षीण मोह में होता है॥

निश्चय नय के आश्रित जीव में
ज्ञानादि रूप अवस्था का स्वरूप :-

57. निश्चय नय के आश्रित जिय में, जो आतमपन रूप कहा।
वही ज्ञान है, वही ज्ञान फिर, दर्शनचारित वही रहा॥
वही शुद्ध है ज्ञान-चेतना, द्रव्य-प्राण अतिक्रान्त रही।
सिद्धों के पायी जाती है, अनन्त परम नित शांत कही॥

निज-भाव की उपलब्धि व योगियों के परमानंद की प्राप्ति :-

58. राग-द्वेष मय भाव नष्ट हों, शुद्ध-भाव तब भासित हों।
परम शुद्ध उन निज भावों से, योग-शक्ति भी भावित हो॥
ऐसे योगीजन के देखो, परमानंद प्रकट होता।
निर्विकल्प स्व-समाधि वाला, सुख अनुभव भी तब होता॥

परमानंद की उपलब्धि बिन योग निरर्थक :-

59. नहीं प्रयोजन रहा योग से, नहीं शक्ति यह जगे जिसे।
जो सच्चेतन शक्ति योग दे, समचित् परमानंद उसे॥
जहाँ सुखद आनंद परम वह, नित्य सु-समकित चेतन में।
जागृत होता ध्यान-योग वह, धारो अपने जीवन में॥

परम सुखकारक परमानंद में मन-चंचलता बाधक :-

60. जब तक देखो योग सु-धारक, योगी का चित् आतम के।
ध्यान विषय से किञ्चित भी वह, विचलित होता ध्या करके॥
तब तक परमानंद न प्रकटे, परम सौख्य का धारक वह।
अतः मंत्र व पंच धारणा, धारें भव से तारक वह॥

अद्वितीय शाश्वत स्वभाव की उत्पत्ति कब? :-

61. सकल विकल्पों के रुकने पर, अद्वितीय इक शाश्वत भाव।
होता प्रकट हि आतम में है, जो कहलाता आत्म स्वभाव॥
जो हि निश्चय नय से जानो, मोक्ष-प्राप्ति का कारण है।
सब पापों का मूल परिग्रह, निज स्वभाव शिव साधन है॥

स्व-स्वभावस्थ योगी क्या,
और क्या नहीं जानता व देखता? :-

62. निजस्वभाव में स्थित योगी, उदय प्राप्त उन विषयों को।
नहीं जानता, किन्तु हि जाने, -शुद्ध, बुद्ध निज आतम को॥
उसी तरह से अति विशुद्ध उस, आतम को नित लखता है।
विषय राग से बहुत दूर वह, निज गुण का रस चखता है॥

आत्मतत्त्वी योगी के मन की अवस्था का स्वरूप :-

63. शुद्ध तत्त्व को पाकर योगी, -का मन न फिर विषयों में-।
-रमता है, वह निरास होकर, एकी होता है निज में॥
पुनः ध्यान रूपी आयुध से, मनस् खत्म हो जाता है।
मोह नाशकर बने अतेन्द्रिय, केवलि बने सुहाता है॥

मोही आत्मा के मन की स्थिति व निर्मोही को लाभ :-

64. जब तक न सम्पूर्ण मोह वह, गलित आत्म से होता है।
तब तक ना वह मन नशता है, बाह्य विकल्प संजोता है॥
क्षीण-मोह के होने पर ही, नशें शेष घातिया कर्म।
ज्ञान, दर्शनावरण तथा वह, नशता अन्तराय भी कर्म॥

मोह-गलन का दृष्टान्त, उसकी महिमा व लाभ :-

65. हनन होय जैसे राजा का, मान गलित वह सैन्य सभी।
स्वयं नष्ट हो जाती देखो, नहीं उपद्रव रहे कभी॥
वैसे ही उस मोह नृपति के, क्षय हो जाने पर वे भी।
अन्य घातिया कर्म गलित हों, शोभें जिनवर पद से भी॥

लोकालोक को प्रकाशक केवलज्ञान का लाभ कब? :-

66. चार घातिया कर्म नाश हों, लोक, अलोक प्रकाशित हों।
ऐसा केवलज्ञान प्रकट हो, त्रिकाल द्रव्य सब भासित हों॥
परम सु-निर्मल केवलज्ञान, अनंत विषय का ज्ञायक हो।
अष्ट महा उन प्रातिहार्य सह, आतम जग की तारक हो॥

त्रिभुवन पूज्य लोकाग्रवासी सिद्ध कब होता है? :-

67. प्रभो अर्हत् त्रिलोक पूज्य वे, शेष अघाति कर्मों का-।
जाल नष्टकर अपूर्व रूपी, शिव पद पाते सिद्धों का॥
लोक शिखर पर वसे आत्मा, परमातम कहलाती है।
गुण अनन्त की स्वामी बनकर, परम ब्रह्ममय भाती है॥

सिद्ध परमात्मा का सच्चा स्वरूप क्या है? :-

68. गमनागमन सभी से विरहित, स्पन्दन, हलन, चलन रहित।
अव्याबाधी सुख में थित है, अष्ट गुणी परमार्थ सहित॥
सिद्धात्मा वह सिद्धलोक में, कृत्य-कृत्य कहलाती है।
अनन्त सुख में तन्मय होकर, शिखामणि सम भाती है॥

सिद्धात्मा के केवलज्ञान व केवलदर्शन की महिमा :-

69. इन्द्रियों के कार्य व अनुक्रम, -रहित, अतिन्द्रिय कहलाते।
युगपत् सर्वलोक अलोक वे, ज्ञान-दर्श में हैं आते॥
मूर्त-अमूर्त सभी द्रव्यों के, अनन्त गुण वा पर्यायें।
हों अनन्त त्रिकालवर्ती जो, ज्ञान-दर्श में झलकायें॥

सिद्ध-परमात्मा का लोकाग्र में अनन्तकालिक वास क्यों? :-

70. सिद्धात्मा वे धर्म द्रव्य बिन, लोक बाह्य न जाते हैं।
इस कारण से लोक शिखर वस, अनंतकाल तक भाते हैं॥
एक द्रव्य दूजे द्रव्यों का, निमित्त कारण बन जाता।
कारण बिन न कार्य होय यह, मग से मंजिल पा जाता॥

निमित्त रूप धर्म द्रव्य और
ऊर्ध्वगमन स्वभावी सिद्धों की सामर्थ :-

71 धर्म द्रव्य के रहते भी वह, जीव न नीचे आता है।
तिर्यक् में भी न जाता है, ऊर्ध्व सुगति को पाता है॥
क्योंकि मुक्तजीव की आतम, ऊर्ध्वगमन स्वभावी है।
ऋजु सुगति से एक समय में, शिव में वशने वाली॥

अशरीरी सिद्धों को नमन :-

72. सिद्ध जीव वे तन से विरहित, अनन्त राजित घने बने।
अन्तिम तन से कुछ कम होकर, जन्म, मरण से रहित बने॥
द्रव्य रूप से अष्टकर्म वा, राग, द्वेष को भाव कहें।
नो कर्म तन, इनसे विरहित, सब सिद्धों को नमन करें॥

तारक व शरण निजात्म व परमात्म रूप स्व, परगत तत्त्व :-

73. जिसमें लीन हुए प्राणी भव, -विषम समुद्र हि तिर जाते।
ऐसा स्व व परगत तत्त्व जो, जिसकी शरणा भवि आते॥
तत्त्वों की श्रद्धा उन्नत हो, पर तज निज को पायें हम।
उपादेय है स्वगत तत्त्व वह, उसमें ही रम जायें हम॥

तत्त्वसार ग्रन्थ अनुचिन्तवन करने का उत्तम फल :-

74. जो सद्दृष्टि महामुनीश्वर- देवसेन से रचे गये।
तत्त्वसार को सुनकर जिसमें, गुणबखान जो किये गये॥
उनके; निशदिन भावन जल में, अपने को नहलायेगा।
वह ध्यानी यति कर्म नाश कर, मोक्ष सुफल को पायेगा॥

प्रशस्ति :-

75. मुनिनाथश्री देवसेन ने, तत्त्वसार रचाया पूर्ण।
आर्जवसागर सूरि यति से, पद्यानुवाद हुआ संपूर्ण॥
अध्यातम के महाज्ञान की, सु-वाचना संपूर्ण हुई।
श्रुत-पञ्चमी पर्व हि आया, तत्त्व भावना पूर्ण हुई॥

स्वाध्याय का सदुपयोग :-

76. ग्रीष्मकाल में अध्यातम का, काव्य बनाया अतिशय योग।
पच्चीस सौ चउलीस सुसंवत, -वीर मोक्ष का रहा सुयोग॥
सर्व ग्रन्थ का सार यही है, आत्म-तत्त्व को अपनावें।
तन, वैभव, जग ममता भूलें, भिन्न द्रव्य तजते जावें॥

पद्यानुवाद में स्थल और विशुद्धि का योग :-

77. आदिनाथ की शरण में, पढ़ा तत्त्व का सार।
विद्यासागर सूरि की, कृपा धर्म विस्तार॥

★★★

78. योग्य काल में भव्य गण, सुनते थे उपदेश।
तत्त्वसार से आत्म का, लेते थे संदेश॥

★★★

79. देवसेन मुनिनाथ ने, पूर्वागम की बात।
अपनी कृति में है रची, मिले ध्यान सौगात॥

★★★

80. नगर शाहपुर में रचा, तत्त्वसार अनुवाद।
अध्यात्म के ज्ञान का, अमृत-सम पा स्वाद॥

★★★

81. धार्मिक नगरी यह रही, कृपा रही गुरुराज।
आते यतिगण खूब हैं, धर्मध्यान के काज॥

★★★

82. समयसार का सार इस, तत्त्वसार में जान।
'आर्जव' मन सह नित पढ़ें, करें आत्म-कल्याण॥

राजर्षि अमोघवर्ष विरचित

प्रश्नोत्तर रत्नमालिका

का पद्यानुवाद

आचार्यश्री आर्जवसागर जी

देव पूज्य वर्द्धमान स्वामी को नमन :-

1. नर सुर असुर सभी से वंदित, देवों के भी देव रहे।
वर्धमान उन महावीर के, पद में नमन सदैव रहे॥
तव गुणगण का मंगल करके, कृति लिखूँ मंगलकारी।
यह प्रश्नोत्तर रत्नमालिका, पाप हरे हो शिवकारी॥

प्रस्तुत शास्त्र से विभूषित कौन होगा? :-

2. जो प्रत्यक्ष व अनुमानित वे, पदार्थ निश्चयकर जाने।
वह प्रवीण निर्दोष आत्मा, कौन रहा जो जग जाने?
प्रश्नोत्तर यह रत्नमालिका, क्या वह कण्ठ न धारेगा।
गा-गाकर जो हार बनाकर, जग भर में यश पायेगा॥

ग्रहण-त्याग योग्य क्या? और गुरु की पहिचान :-

3. हे भगवन्! मम ग्रहण योग्य क्या? गुरु वचन हैं रहे सुयोग्य।
और त्यागने रहा योग्य क्या? अकार्य पाप वे रहे अयोग्य॥
सुगुरु कौन वह जग में उत्तम? सुतत्त्व का ज्ञाता होता।
सदा प्राणियों के हित करने- में तत्पर यतिवर होता॥

विद्वानों का कार्य व मोक्ष का बीज :-

4. हे भगवन्! सब ज्ञानीजन का, क्या कर्त्तव्य शीघ्र करना?
चतुर्गति के भ्रमण कार्य वे, पाप पलायन सब करना॥
मोक्ष वृक्ष का बीज रहा क्या? जिसे सुरक्षित नित रखना।
समीचीन संज्ञान साथ में, सदाचरण पालन करना॥

मोक्षमार्ग में पाथेय, पवित्र, पण्डित व विष क्या है?:-

5. मोक्ष मार्ग के बीच हमारा, क्या पाथेय रहा प्रभुवर?
धर्म अहिंसा, रत्नत्रय भी, है पाथेय सदा जिनवर॥
कौन रहा है पवित्र भव में? वह है शुद्ध जहाँ है मन।
पण्डित कौन? विवेकी जानो, क्या विष? गुरु निंदक जो जन॥

संसार में सारभूत वस्तु क्या है? :-

6. भव में सारभूत रहा क्या? बार-बार चिंतन करना।
इस मानव जीवन में उत्तम, तत्त्वदर्शपन को गहना॥
और स्व-पर कल्याणीपन में, तत्परता जिसकी होगी।
वही जगत् में धर्म सार है, भव मुक्ति उसकी होगी॥

वास्तविक मोह, चोर, बेलि और शत्रु कौन है? :-

7. मदिरासम संमोह जनक क्या? विषय-राग है तुम जानो।
कौन चोर हैं जग में भारी? इन्द्रिय विषयों को मानो॥
भव बेलि क्या? तृष्णा जानो, वास्तविक शत्रु कौन रहा?
न कर्त्तव्य करे जो अपना, आत्म पतन संलग्न रहा॥

संसार में अत्यधिक भय, महांध व शूरवीर पना क्या है? :-

8. इस जग में किससे भय होता? सदा मरण से भयता हो।
कौन अंध से महा अंध वह? जहाँ विषय आतुरता हो॥
शूरवीर इस जग में प्राणी, कौन श्रेष्ठ माना जाता?
नारी लोचन काम वाण से, नहीं विदारित हो पाता॥

सच्चा अमृत और बड़प्पन का मूल क्या है? :-

9. द्वि कर्णों से अमृत-पान सम, क्या? जग में जाना जाता।
विषय-दाह को शांत करे जो, सदुपदेश माना जाता॥
कौन रहा जीवन में उत्तम-गौरव कारण कहलाता?
नहीं मांगता निज के कारज, गौरवशाली जग भाता॥

जग में जटिल कार्य, चातुर्य, दरिद्रता व हीनता क्या है? :-

10. हे भगवन् इस जग में सबसे, कठिनकार्य है कौन रहा?
स्त्री का चारित्र जगत् में, समझ बाह्य अतिकठिन रहा॥
चतुर कौन इस जग में जानो? जो स्त्री के वश न हो।
दरिद्र कौन? संतोषी न जो, हीन कौन? याचक जो हो॥

वास्तविक जीवन, जड़ता, जागृति और निद्रा क्या है? :-

11. जीवन सार रहा किसमें है? जहाँ दोष का नाम न हो।
मूर्ख रहा वह कौन आत्मा? जाने फिर पुरुषार्थ न हो॥
जागृत कौन? जो भले बुरे के, ग्रहण त्याग में तत्पर हो।
सुप्त कौन वह? न जाने जो, जीव हेतु क्या हितकर हो॥

भव में अनित्य वस्तुएँ क्या? और शीतलता कहाँ? :-

12. कमल पत्र पर पड़ी बिन्दु सम, चंचल क्या वह होता है?
यौवन, धन वा आयु जानो, इनकी क्षण भंगुरता है॥
चन्द्र किरण के समूह सदृश, शीतल भाता कौन यहाँ?
जग उपकारी सज्जन जानो, उस सम भाये कौन महा॥

इस भू पर नरकपना, सच्चा सुख, सत्य व प्रिय वस्तु क्या है? :-

13. नरकों सादृश क्या वह होता? पराधीनता दुखदायी।
सच्चा सुख क्या? संग विरत जो, त्याग मार्ग है सुखदायी॥
सत्य मार्ग क्या? सब जीवों का,-हित करने में रत रहना।
प्रिय वस्तु क्या जग में उत्तम? प्राण सुरक्षित निज करना॥

सच्चा दान, मित्र, आभूषण, व वाणी का अलंकार क्या है? :-

14. उत्तम दान जगत् में क्या है? भला कार्य निःस्वार्थ करें।
मित्र कौन है सच्चा जग में? सब पापों से दूर करे॥
निज आतम शृंगार रहा क्या? सच्चारित्र सदा जानो।
वचनों का आभूषण क्या है? सत्य वचन शुभ पहचानो॥

पाप का फल, सुख का स्रोत क्या?
और दोष विजयी कौन? :-

15. सर्व अनर्थों का फल क्या है? मन की पीड़ा आकुलता।
सुख का झरना किससे झरता? जहाँ हि मैत्रीपन पलता॥
सर्व बुरे व व्यसन कार्य को, क्षय करने में कौन कुशल?
पर पदार्थ को मन-वच-तन से,- त्यागे, होता वही सफल॥

इस जग में वास्तविक अंधा, बहरा और गूंगा कौन? :-

16. किसे कहा है अन्धा जग में, निन्द कार्य में लीन रहे।
बहरा किसको माना जाता? हित सुनने में हीन रहे॥
गूंगा कहते किसे हैं प्राणी? जो हि सुअवसर पाकर भी।
प्रिय मधुर हितकर न बोले, नहीं प्रशंसित होय कभी॥

संसार में सच्ची मृत्यु, अमूल्य वस्तु और शल्य क्या? :-

17. सच्चा किसे सुमरण कहा है? जहाँ मूर्खता अज्ञपना।
अमूल्य वस्तु हि जग में क्या है? वस्तु सुअवसर दत्तपना॥
जीवन भर की शल्य रही क्या? कांटे सम जो चुभती है।
कृत अकार्य वह छुपकर ऐसा, जिससे दुर्गति होती है॥

प्राणी पुरुषार्थ कहाँ करे और उपेक्षा कहाँ करे? :-

18. कहाँ बने पुरुषार्थी प्राणी? ज्ञानार्जन को करने में।
तथा श्रेष्ठ हि औषध पाने, सत्पात्री को देने में॥
कहाँ उपेक्षा करे आत्मा? दुर्जन, पर-तिय, परधन में।
ज्ञान, दान गुण वर्धन कारण, अपनावें स्व जीवन में॥

धर्मी किसका नित्य चिंतवन करें व प्रेमिका किसे बनावें? :-

19. किसका निशदिन चिन्तन करना,? भव असारता का जानो।
ना नारी के चिंतन में भवि, मन उलझाना तुम मानो॥
किसे प्रेमिका चुने सुधर्मी? जिससे पाप पलायन हो।
जीव दया अरु कार्य चतुरता, जगत् मित्रता धारण हो॥

मानव कण्ठगत प्राण रहने पर भी किसके आधीन न हो? :-

20. अगर कण्ठ तक प्राण बचें तो, -भी किसके आधीन न हो?
अज्ञ-मूर्ख से दूर सदा वा, सदा स्वयं स्वाधीन रहो॥
हर दम दुख के रोने वाले, से भी नहीं अपेक्षा हो।
रहे घमण्डी और कृतघ्नी, स्वार्थी तजों परीक्षा लो॥

सच्चा पूज्य, निर्धन और जगत विजयी कौन? :-

21. पूज्यनीय है कौन जगत् में? सच्चारित का धारक जो।
निर्धन किसको कहा जाय? जो, चरित सदोषी पालक हो॥
इस जग को किसने जीता है? सत्य मार्ग जिस ने पाया।
क्षमावान है जो धर्मी बस, सारे जग ने गुण गाया॥

देवों द्वारा वंदनीय कौन? और किससे रहें भयभीत? :-

22. देवों द्वारा किसे सदा ही, नम्र प्रणाम किया जाता?
जहाँ प्राणियों को निश दिन ही, सुदया दान दिया जाता॥
बुद्धिमान को सारे जग में, किससे ज्यादा भय होवे?
यह संसार दुखों की अटवी, विषयों में न क्षण खोवें॥

प्राणी किस व्यक्ति के वशी होते हैं? हम किस मार्ग में रहें? :-

23. किसके वश हों जग के प्राणी? विनीत, सत्य, प्रियभाषी के॥
कहाँ रहे थित धर्मी मानव? न्याय मार्ग अभ्यासी के॥
इह, परलोक लाभ का कारक, -त्याग धर्म शुभ पुण्य भरे।
न्याय-मार्ग से चलें निरन्तर, अडिग बने भव धन्य करे॥

विश्व में अधिक चंचल और अचल कौन? :-

24. बिजली के उस चमत्कार सम, चंचल जग में क्या होता?
रही दुर्जनों की संगत अरु, युवति मन चंचल होता॥
पर्वत-सम निष्कम्प अचल इस, विकट समय में कौन रहे?
धर्मात्मा वह पुरुष अकम्पित, पाप कर्म में मौन रहे॥

खेद जनक और प्रशंसनीय कार्य क्या है? :-

25. सब सम्पद् के होते भी वह, खेद जनक क्या बात रही?
दान दिये बिन कंजूसी हो, बड़ी खेद की बात रही॥
सम्पत्ती सह प्रशंसनीय क्या? उदारता होती जिसके।
निर्धन, बलिष्ठ प्रशंसनीय कब? उदार, सहन शक्ति जिसके॥

लोक में चिन्तामणि सम दुर्लभ क्या हैं? :-

26. चिन्तामणि सम यहाँ लोक में, दुर्लभ चउ क्या भद्र रहे?
चिन्तित वस्तु पुण्यवान को, देते जो हों भद्र रहे॥
ज्ञानावरणी अंधकार को, जिन भगवन् ने दूर किया।
बतलाये वे चार भद्र अरु, धर्म-कर्म से पूर किया॥

अतिदुर्लभ हैं चार भद्र :-

27. सादर सुप्रिय वच सह जिसका, -दान प्रशंसित होता है।
गर्व रहित वह ज्ञान जगत् में, सम्मानित भी होता है॥
क्षमा सहित वह शूरवीरता, बैर भाव बिनशाती है।
दान सहित सम्पत् दुर्लभ सह-चतुर्भद्रता भाती है॥

प्रश्नोत्तर माला से विद्वानों की शोभा :-

28. ऐसी निर्मल प्रश्नोत्तर की, रत्नमाल जिसके शोभे।
कण्ठ विराजी माला ऐसी, सब दोषों को नित धोबे॥
अन्य आभरण न हो फिर भी, ज्ञानीजन के बीच महान।
सभा सुशोभित होता वह भवि, ऐसी माला जिसके जान॥

राज्यविरक्त अमोघवर्ष ने रचा विद्वानों का आभूषण :-

29. हेय तथा उस उपादेय का, विवेक जगने पर जिसने।
राज्य छोड़कर साधु वेश धर, मोक्ष सुपथ धारा उसने॥
ऐसे अमोघवर्ष राजा ने, रत्नमालिका रच डाली।
ऐसी बुधजन की माला ने, जग में ख्याति शुभ पा ली॥

प्रशस्ति

30. राष्ट्रकूट के नृप रहे, अमोघवर्ष महान।
श्री जिनसेनाचार्य के, बने शिष्य थे जान॥

★★★

31. सहस्र वर्ष के पूर्व की, घटना रही महान।
राज्यपाट को छोड़कर, यतिवर बने सुजान॥

★★★

32. राज्य त्याग, व्रत धारकर, जगा विवेक विशाल।
प्रश्नोत्तर शुभ रत्न की, माला रची खुशाल॥

★★★

33. नीति सुवाक्य विचार ये, पढ़ें, बढ़े आचार।
जीवन परिमल शुभ बने, चारित पाय निखार॥

★★★

34. मध्य प्रान्त में शोभता, नाम शाहपुर जान।
सागर की शुभशान है, है आचार प्रधान ॥

★★★

35. ग्रीष्म काल का योग शुभ, मिला सुयोग महान।
वाचन–पाचन योग से, रची काव्य कृति जान॥

★★★

36. वर्ष वीर निर्वाण का, पच्चीस सौ चउलीस।
हुआ पद्य अनुवाद यह, पढ़ें, बनें शिव ईश॥

★★★

37. जो भवि इसको कण्ठ से, गायेंगे शुभ काल।
'**आर्जवसागर**' बन सभी, जग शोभें खुशहाल॥

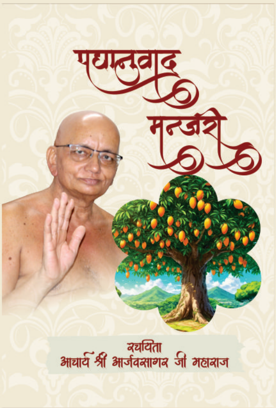

पद्यानुवाद मञ्जरी कुछ खास

धर्म-दर्शन और अध्यात्म के सार को आज की भाषा एवं छन्द की मनोरम काव्य-शैली में निबद्ध कर कविता-रचना को नया आयाम देने वाली एक अनुपम कृति है- पद्यानुवाद मञ्जरी।

यह रचना; महान ग्रन्थों की सारप्रद रचना है जिसमें आचार्य भगवन् द्वारा गोम्मटेश थुदि, भक्तामर स्तोत्र, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, वारसाणुवेक्खा, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ग्रन्थों का पद्यानुवाद ज्ञानोदय छन्द में किया है। इस अमूल्य कृति की रचना कर गुरुदेव आर्जवसागर जी ने जनमानस पर बहुत बड़ा उपकार किया है। इस कृति के स्वाध्याय से हम परमात्मा के निकट पहुँच सकते हैं। सुंदर, सरल शब्दों में लिपिबद्ध यह अद्वितीय कृति सराहनीय है।

कुंडलपुर बड़ेबाबा के जिनालय का पावन दृश्य